महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : १७

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: भाद्रपद कृष्ण २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

सितम्बर प्रथम २०१८

अनुक्रम

०१. वेद - स्वाध्याय का पर्व श्रावणी	सम्पादकीय	०४
०२. १३५ वाँ ऋषि बलिदान समारोह		०६
०३. मृत्यु सूक्त-१३	डॉ. धर्मवीर	०७
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०५. वेदगोष्ठी-२०१८		१४
०६. महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश	मोहनचन्द	१६
०७. प्रभु की दयालुता	गङ्गाप्रसाद उपाध्याय	२१
०८. डॉ. सुभाष वेदालङ्कार		२९
०९. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		३१
१०. 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'	रामनिवास गुणग्राहक	३२
११. शङ्का समाधान- ३२	डॉ. वेदपाल	३८
१२. संस्था समाचार		३९
१३. पं. नारायण प्रसाद 'बेताब'	प्रभाकर	४०

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वेद - स्वाध्याय का पर्व श्रावणी

आर्यों के समस्त कर्त्तव्य कर्मों का उत्स वेदोपदेश में सन्निहित है। यह वेदोपदेश प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषियों द्वारा अन्य मनुष्यों को उपदिष्ट होता रहा है। ताकि मनुष्य स्वयं के साथ तथा समस्त जड़-चेतन जगत् के प्रति सम्यक् या सन्तुलित व्यवहार करता हुआ मोक्षमार्गी हो सके। इस प्रकार सारी विद्याओं या प्रवृत्तियों का मूल वेद है तथा तदनुकूल ऋषियों का उपदेश भी। यह वेदोपदेश की धारा निरन्तर प्रवाहमयी रहे, इसका लाभ संसार को मिलता रहे, इसके लिए अनेक कर्मकांड, परम्पराएँ, नियमोपनियम, संस्कार इत्यादि पूर्ववर्ती ऋषियों, आचार्यों द्वारा निर्धारित किए गए। आश्रम-व्यवस्था, सोलह-संस्कार, पंच महायज्ञ तथा अन्य बृहद् यज्ञों के माध्यम से संसार के मनुष्यों को निरन्तर संस्कारित होने के लिए प्रेरित किया गया। ऋषियों की महामेधा के कारण आर्यों का ज्ञान विश्व में आज भी हमें उसी रूप में प्राप्त है, जिस रूप में सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषियों के माध्यम से परमात्मा ने प्रदान किया था। अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन एक यज्ञ के रूप में आज भी आर्यों की दिनचर्या का अभिन्न अंग है।

श्रावणी का पर्व स्वाध्याय का ही रूप है और एक पर्व के रूप में यह **स्वाध्यायपर्व** है, वेदवाणी को विशेषत: सुनने-सुनाने और पढ़ने-पढ़ाने का पर्व है, एक विशेष अवधि तक वेदों का श्रवण (मनन, चिन्तन) होने से भी यह श्रावणी पर्व है। **सुनने (श्रवण करने) की पराकाष्ठा वेद-श्रवण ही है, इससे श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं।**

गुरुकुलस्थ ब्रह्मचारी अध्ययन (तथा अध्यापन भी) करने के माध्यम से स्वाध्याय करता है-'**आचार्याधीनो वेदमधीष्व।**', गृहस्थ में भी उसे दीक्षान्त में उपदेश कर दिया जाता है-'**स्वाध्यायान्मा प्रमद:**' तथा '**स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्**', वानप्रस्थ में भी वह नित्य स्वाध्याय करे-'**स्वाध्याये नित्ययुक्त: स्यात्**' और संन्यासी वेदचिन्तनपूर्वक स्वाध्याय करता है-'**वेदमेकन्न संन्यसेत्।**'

'स्वाध्याय' शब्द की निष्पत्ति यह बताती है कि 'सु' अर्थात् अच्छा या सम्यक् स्वाध्याय अथवा आत्म-चिन्तन अर्थात् आत्मोन्नति के उपायों पर भली भाँति विचार करना, जिसकी सर्वोत्कृष्ट विधि वैदिक उपदेशों में सन्निहित मार्गदर्शन ही है। किसी भी प्रकार से स्वाध्याय शब्द पर विचार किया जाए, उसका तात्पर्य वेद का पारायण ही ठहरता है। ब्राह्मण तथा अन्य ग्रन्थों की सम्मति भी यही दर्शाती है कि वेदाध्ययन ही स्वाध्याय है। अन्य शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन वेदानुकूल होने से ही स्वाध्याय है।

कोई भी शब्द अपने आप में संस्कृति, सभ्यता और दार्शनिकता को समेटे हुए होता है। विशेष रूप से ऋषियों द्वारा प्रदत्त या निर्मित शब्दों का आशय अतिशय गूढ़ और वेदोपदेश को प्रदर्शित करने वाला होता है। **स्वाध्याय** शब्द यही बता रहा है कि जीवन के समस्त सांसारिक-लौकिक और आध्यात्मिक कर्मों की सिद्धि वेदोपदेशानुसार आचरण करने से ही हो सकती है। उपनिषद् यही भाव व्यक्त करता है-

तपश्च स्वाध्याय-प्रवचने च। दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। मानुषञ्च.... प्रजा च... प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च। .....तद्हि तपस्तद् हि।''

(तैत्तिरीयोपनिषद्)

मनु महाराज कहते हैं-''**नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत, निगमाँश्चैव वैदिकान्।**'' और ''**सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिन:।**'' तात्पर्य वही है कि स्वाध्याय के बिना संसिद्धि और परमगति नहीं है। चाहे अन्य लौकिक कार्य छूटें, परन्तु स्वाध्याय नहीं छूटना चाहिए।

महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में नियमों के अन्तर्गत स्वाध्याय को परिगणित किया है-''**शौचसन्तोषतप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानानि....।**'' पतंजलि मुनि ने स्वाध्याय का फल बताया है-''**स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग:।**'' अर्थात् स्वाध्याय से इष्टदेव परमात्मा की प्राप्ति होती है। यह परमात्मप्राप्ति वेद के स्वाध्याय के बिना संभव नहीं है। पहले भी स्वाध्याय का फल योगभाष्य में व्यासमुनि ने बताया है-

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् मनुष्य स्वाध्याय से योग अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध प्राप्त करे और उसके निरोध से स्वाध्याय अर्थात्

मोक्षोपायों को दर्शाने वाले शास्त्र अर्थात् वेद का अध्ययन करे। इससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश हो जाता है।

प्राचीन काल से ही यह धारणा विभिन्न शास्त्र-वचनों तथा परम्पराओं के माध्यम से आर्यजनों में सम्पुष्ट की जाती रही है। भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप ही श्रावणी पर्व का प्रचलन किया गया कि सभी आर्यजन वर्षा की ऋतु के अधिकतम चार महीनों में आवागमन इत्यादि से मुक्त होकर स्वाध्याय में रत रह सकें। वर्षा की दुरूह स्थितियों में वनों में असुरक्षित होने से ऋषि-मुनि इत्यादि तपस्वीजन नगरों में गृहस्थों के आश्रय से ही रहते थे। इससे गृहस्थों और तपस्वियों-दोनों को वेदादि सत्य शास्त्रों के उपदेश का लाभ प्राप्त होता था। अत: यह चातुर्मास्य की स्वाध्याय की परिपाटी प्राचीनकाल से एक सुदृढ़ परम्परा के रूप में चली आ रही है। सभी आर्यों को इसका अनुकरण करते रहना चाहिए, क्योंकि **बिना स्वाध्याय के आर्य नहीं बन सकता और बिना स्वाध्याय के बना हुआ आर्य भी 'आर्य' नहीं रह सकता।**

शास्त्र कहता है-

यन्ति वा आप एत्यादित्य एति चन्द्रमा यन्ति नक्षत्राणि। यथा ह वा एता देवता नेयुर्न कुर्युरेवं हैव तदहब्राह्मणो भवति। यदहः स्वाध्यायं नाधीते। तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।

(शतपथे)

अर्थात् ''जल गतिशील है; सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र भी गतिमान् हैं। जिस प्रकार ये दिव्यगुणयुक्त (जड़) देवता यदि गति न करें-कर्त्तव्यों से च्युत हो जाएँ, तो संसार की अत्यन्त हानि होवे। कोई ब्राह्मण भी उस दिन अपने कर्त्तव्यों-दिव्यता से च्युत होता है, जिस दिन वह स्वाध्याय नहीं करता है।''

आगे शतपथ में ही स्वाध्यायशील की प्रशंसा में कहा है-''अथात: स्वाध्याय-प्रशंसा.....चावध्यतया च।'' अर्थात् स्वाध्यायी पुरुष को पढ़ना-पढ़ाना प्रिय लगते हैं, वह एकाग्रचित्त और स्वाधीन वृत्ति वाला हो जाता है; दिनानुदिन उसको प्रत्येक कार्य में सिद्धि प्राप्त होती है, सुखपूर्वक सोने वाला हो जाता है, स्वयं की शंकाओं के निवारण में परम निष्णात चिकित्सक होता है, इन्द्रियजयी और स्वयं में प्रसन्न रहने वाला होता है, उसकी प्रज्ञा में वृद्धि से उसके लोकव्यवहार यशकारक होते हैं, उसकी बुद्धिमती प्रज्ञा उसे पठन-पाठन तथा यजन-याजन आदि कर्मों से युक्त कर देती है।'' इत्यादि।

अत: आर्यजनों को श्रावणी के इस पर्व पर पठन-पाठन और यजन-याजन का विशेष आयोजन कर वेदनिर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मोक्षमार्गी होना चाहिए।

मनु महाराज कहते हैं-

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते।।

(जैसे-जैसे पुरुष वेदादि सत्य शास्त्रों के अध्ययन में गति प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे उसके ज्ञान में वृद्धि होती है और मोक्षपरक ज्ञान में उसकी रुचि होने लगती है।)

- दिनेश

प्राचीन काल में इस दिन **उपाकर्म** होता था, अर्थात् गुरुकुल विश्वविद्यालयों के अधिवेशन हुआ करते थे, जैसे अब यूनिवर्सिटियों के हुआ करते हैं, जिनमें वर्षा के प्रारम्भ में स्थगित किया हुआ वेदाध्ययन फिर से प्रारम्भ किया जाता था। इसका नाम **श्रावणी** वा **ऋषितर्पणी** था।

स्वामीजी ने कहा .....''आप अपने देश की रीति भूल गए। आज के दिन राजा की ओर से बृहद् यज्ञ होता था और जितने विद्यार्थी शालाओं में पढ़ते थे उनके हाथ में राजा की ओर से '**रक्षा**' बाँधी जाती थी, जिससे प्रजा और राज-पुरुष उनकी रक्षा करें और कोई उन्हें कष्ट न दे।''

- दयानन्द जीवन चरित से

'आचार्य धर्मवीर सत्संग भवन' का उद्घाटन

श्री सुधीर कुमार गुप्ता द्वारा अपने निवास स्थान बिलासपुर छत्तीसगढ़ में तीन दिवसीय सत्संग कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पारिवारिक सम्बन्धियों एवं श्रद्धालुओं ने भजनोपदेशक कंचन कुमार एवं आचार्य अखिलेश्वर के उपदेशों का लाभ लिया। कार्यक्रम में एक नवनिर्मित सत्संग भवन का उद्घाटन भी किया गया, जिसका नाम 'आचार्य धर्मवीर सत्संग भवन' रखा गया। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि आचार्य धर्मवीर जी की धर्मपत्नी श्रीमती ज्योत्स्ना 'धर्मवीर' रहीं।

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में
१३५ वाँ ऋषि बलिदान समारोह
दिनांक १६, १७, १८ नवम्बर २०१८, शुक्र, शनि, रविवार

महापुरुषों का यज्ञमय जीवन हमको प्रत्येक कदम पर प्रेरणा व मार्गदर्शन देता रहता है, जिस कारण हम उनके ऋणी हो जाते हैं। इस ऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय है- महापुरुषों की विचारधारा का यथासामर्थ्य प्रचार-प्रसार। विराट व्यक्तित्त्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण को चुकाने का स्वर्ण-अवसर ऋषि के १३५वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है।

ऋग्वेद पारायण यज्ञ- 'ऋग्वेद पारायण यज्ञ' की पूर्णाहुति बलिदान समारोह के अन्तिम दिन १८ नवम्बर को प्रातः १० बजे होगी। यह यज्ञ ऋषि-उद्यान अजमेर की यज्ञशाला में सम्पन्न होगा।

वेदगोष्ठी - प्रतिवर्ष की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ दिल्ली एवं अनुसन्धान केन्द्र परोपकारिणी सभा के संयुक्त प्रयास से वेदगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। इस गोष्ठी में देश के विविध विद्वान् अपने शोधपूर्ण मौलिक विचार प्रस्तुत करेंगे। इस वर्ष वेदगोष्ठी का विचारणीय बिन्दु है- **षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द।** जो विद्वान् गोष्ठी में शोधपत्र प्रेषित करना चाहते हैं, वे १० नवम्बर तक सभा के पते पर प्रेषित करवा देवें। १६, १७, १८ नवम्बर को ऋषि बलिदान समारोह के कार्यक्रमों के साथ-साथ वेदगोष्ठी भी चलती रहेगी। ऋषि-भक्त इसे सुनने का लाभ उठा सकते हैं।

चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण वेद प्रतियोगिता- प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में २१ वर्ष तक के छात्र भाग ले सकते हैं। किसी भी वेद को आद्योपान्त स्मरण करके इस प्रतियोगिता में भाग लिया जा सकता है। जो छात्र जिस वेद पर गत वर्षों में पारितोषिक ग्रहण कर चुके हैं, वे उस वेद से अतिरिक्त वेद स्मरण करके भाग ले सकते हैं। १६ नवम्बर को परीक्षा एवं १७ नवम्बर को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम होगा। जो छात्र इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, वे अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों, संस्थानों से आचार्य द्वारा अधिकृत पत्रक पर २-छायाचित्र सहित अपना परिचय १० नवम्बर, २०१८ तक आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर के पते पर भेज दें।

सम्मान - प्रतिवर्ष विशिष्ट वैदिक विद्वान्, विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को इस समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष भी सम्मान -समारोह होगा। जिसमें अनेक विद्वान्-विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जायेगा।

नवम्बर के आरम्भ में अजमेर में हल्की ठंड होने लगती हैं, ऋषि उद्यान खुले में होने से सर्दी का प्रभाव कुछ अधिक रहेगा। रात्रि में कम्बल ओढ़ने जैसी ठण्ड रहेगी। जो समूह में रहना चाहते हैं उनकी निवास व्यवस्था ऋषि उद्यान में होगी और जो अपने निवास की व्यवस्था होटल-धर्मशाला में करवाना चाहते हैं, कृपया वे सभा कार्यालय से पूर्व सम्पर्क कर अग्रिम राशि जमा करवा कर कमरा आरक्षित करवा लें। सभी से विशेष निवेदन है कि अपने आने की सूचना कम से कम एक सप्ताह पूर्व दे देवें, जिससे संख्या का अनुमान होकर तद्नुसार व्यवस्था की जा सके। सभी से निवेदन है कि १३५वें बलिदान समारोह में अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकत्ताओं सहित पधार कर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें, महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा उत्साह प्राप्त कर प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

ऋषि मेले में आमन्त्रित विद्वान् एवं विशिष्ट अतिथि- प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु-अबोहर, श्री सुरेश अग्रवाल-प्रधान सार्वदेशिक सभा, आचार्य विजयपाल-झज्जर, श्री सोमपाल शास्त्री- पूर्व केन्द्रीय कृषि मन्त्री, श्री सज्जनसिंह कोठारी-लोकायुक्त जयपुर, श्री विजयसिंह भाटी-जोधपुर, श्री विनय आर्य-मन्त्री दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, श्री इन्द्रजित् देव-यमुनानगर, डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री- रायबरेली, डॉ. रघुवीर वेदालंकार-दिल्ली, स्वामी ऋतस्पति-होशंगाबाद, डॉ. ब्रह्ममुनि-महाराष्ट्र, डॉ. वेदपाल-बड़ौत, आचार्या सूर्या देवी- शिवगंज, डॉ. विक्रम कुमार 'विवेकी'-चण्डीगढ़, श्री तपेन्द्र वेदालंकार-(रि. आई.ए.एस.) जयपुर, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि-झज्जर, श्री कन्हैयालाल आर्य-गुरुग्राम, डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'-दिल्ली, डॉ. रामचन्द्र-कुरुक्षेत्र, श्री दीनदयाल गुप्त-कोलकाता, श्री शत्रुघ्न आर्य-राँची, डॉ. जगदेव-रोहतक, डॉ. रमेशचन्द्र 'जीवन'- चण्डीगढ़, डॉ. वीरेन्द्र अलंकार-चण्डीगढ़, डॉ. ज्ञानप्रकाश-गुरुकुल काँगड़ी, डॉ. रूपकिशोर-गुरुकुल काँगड़ी, डॉ. सोमदेव 'शतांशु'-गुरुकुल काँगड़ी, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार-कुरुक्षेत्र, डॉ. विनय विद्यालंकार, डॉ. कृष्णपाल सिंह-जयपुर, श्री सत्यानन्द आर्य- दिल्ली, श्री जगदीश शर्मा-जयपुर, श्री शिवकुमार चौधरी-इन्दौर, श्री जयदेव आर्य-राजकोट, श्री ठा. विक्रमसिंह-दिल्ली, डॉ. उदयन- तेलंगाना, श्री प्रकाश आर्य-महू, श्री सत्यपाल पथिक, प. भूपेन्द्र सिंह आदि।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '८०-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप कर मुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्त हस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। सभा को भारतीय शासन द्वारा विदेशों से दानस्वरूप दी गई राशि को प्राप्त करने की छूट प्राप्त है। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

गजानन्द आर्य	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	ओम मुनि
संरक्षक	कार्यकारी प्रधान	मन्त्री

मृत्यु सूक्त-१३

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

जैसा कि हम चर्चा कर रहे थे कि मृत्यु हमारी इस यात्रा का अगला पड़ाव है और इस पड़ाव पर हमें पहुँचना है। जो भी मरकर यहाँ से जा रहा है, उनमें हर व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से जा रहा है। कोई सुखी जा रहा है, कोई दुःखी जा रहा है, कोई डरता हुआ जा रहा है, कोई निर्भय होकर जा रहा है, कोई सहज भाव से जा रहा है। यह जो प्रत्येक व्यक्ति का जाने का अन्तर है इसका क्या कारण है, इसका क्या आधार है? इस बात को विचार करते हुए समझाया गया है कि इस व्यापक परिवेश को जिसने समझ लिया है वो इसकी यात्रा कर सकता है।

लोग कहते हैं कि अरे भाई, गंगा जल पिलाओ, पर हम यह कहते हैं, ओ३म् का नाम लो। कुछ राम का नाम बुलवाना चाहते हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि मरने वाला उसी का उच्चारण करे जो आप चाहते हैं, क्योंकि शास्त्रों में चर्चा यह रहती है कि जब व्यक्ति की मृत्यु सन्निकट होती है तो उसकी स्मृति में उसका जीवन घूमता है, उसका चित्रपट घूमता है और वह घूमता क्या है-**कृतं स्मर**। इसको समझने के लिए योगदर्शन का एक सूत्र बड़ा उपयोगी है। वो कहता है, **ततस्तद्विपाकानुगणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्।** जो विपाक है अर्थात् जो मनुष्य का जन्म हो रहा है, उसके जन्म के तो बहुत से कारण हैं, मृत्यु के समय बहुत सारी परिस्थितियाँ हैं कि वो किस ओर जाए। ऐसे समय में वह कहाँ जाएगा? तो वो यह कहते हैं कि ऐसे समय में सारे कर्मों का जो लेखा-जोखा है, वो एक निर्णायक बिन्दु पैदा करता है कि उसको किस योनि में, किस जन्म में, किस स्थान में, किस परिस्थिति में पहुँचना है। इसलिए मनुष्य उस समय वैसा अनुभव करता है, वैसा उसका विचार बनता है। इसलिए कहा जाता है कि मरते समय व्यक्ति को जैसा विचार होता है, मनुष्य वैसी ही मृत्यु को प्राप्त करता है। यह ऐच्छिक नहीं है कि मैं मरते समय अच्छा विचार बना के अच्छी जगह चला जाऊँ।

मैंने जीवन भर जो किया है मेरे विचार उसके अनुकूल ही होते हैं और वैसा ही होता है। उस समय वही विचार मेरे मन में आता है और उसी विचार के अनुसार मेरी गति बनती है, मेरी आगे की यात्रा होती है। इस बात को हमारे शास्त्रों ने अनेक तरह से समझाया है, वही यहाँ पर भी समझाया है। इसलिए कहा जाता है- **ओ३म् क्रतो स्मर**। तू 'क्रतु' जो कर्म है, ज्ञात है, इनका समुच्चय है, इनका स्थान है, ऐसे परमेश्वर को तू स्मरण कर। ऐसे सामर्थ्य को तू स्मरण कर। तू अपने सामर्थ्य का स्मरण, परमेश्वर के सामर्थ्य एवं व्यवस्था का स्मरण कर। तूने जो कि किया है उसको स्मरण कर। यदि ऐसा करेगा, तो जो तूने जीवन भर अच्छा किया है, वो तुझे उस अच्छे की ओर ही ले जाएगा। **'न हि कल्याणकृतः कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति'**। जिसने जीवन में कल्याण किया है, परोपकार किया है, भला किया है वो कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता, वो सदा सद्गति को ही प्राप्त होता है, इसलिए हमारे यहाँ मृत्यु के समय जो विचार हो, वैसे जीवन की प्राप्ति की बात कही जाती है।

यहाँ तीन चीजें अपने आप सिद्ध हैं-एक हमारा कर्म है, एक फल है और एक फल को देने वाला है। हम कर्म करते हैं, कर्म करने का कारण हमारी इच्छा है। हमको कुछ इच्छा होती है, कुछ अनिच्छा होती है, इसको हम दूसरी भाषा में राग-द्वेष कहते हैं। हम जो चीज लाभदायक समझते हैं, उपयोगी समझते हैं उसको चाहते हैं। जो हमारे लिए हानिकारक है, उससे द्वेष करते हैं, उसको नहीं चाहते हैं। ये जो मेरे अन्दर इच्छा पैदा हो रही है, ये इच्छा मुझसे कर्म करवाती है। उस क्रिया को करवाने के लिए आधार बनती है और मैं वैसा कर्म करता हूँ। मैं जब कर्म करता हूँ, तो जो कुछ किया है उसका परिणाम अवश्य होता है। करने में और होने में एक अनिवार्य संबन्ध है। क्योंकि हम जब कह रहे हैं कि हो रहा है, तो इसके पीछे छिपी हुई बात होती है कि कोई कर रहा है। जब हमें लगता है यह स्वयं ही हो रहा है, तब अन्तर केवल इतना

होता है कि इसका करने वाला बाहर नहीं बैठा है। **जब मनुष्य करता है, तो 'कर रहा है' होता है और जब परमेश्वर करता है तो 'हो रहा है' होता है।** तो यह संसार चलाया नहीं जा रहा है, चल रहा है। पेड़-पौधे स्वयं उगते हैं, हवा खुद ही चलती है। हम पंखा चलाते हैं। मनुष्य जो कुछ कर रहा है वो, क्योंकि क्रिया से बाहर से कर रहा है इसलिए उसके करने और होने के बीच का अन्तर दिखाई देता है। करने वाला कहीं बैठा है, हो कहीं रहा है। लेकिन, जब करने में और होने में दोनों की निकटता होती है, तब मुझे करना और होना अलग-अलग दिखाई नहीं देता, कर्त्ता अलग से दिखाई नहीं देता। उस समय कर्त्ता उस क्रिया के अन्दर होता है। मनुष्य जब करता है, तो क्रिया से बाहर होता है। मनुष्य मोटर चलाता है, साइकिल चलाता है, कार चलाता है, रेल चलाता है, हवाई जहाज चलाता है, तब मनुष्य चला रहा है और वाहन चल रहा है। उस चलने में और चलाने में दोनों अलग-अलग दिखाई देते हैं। एक चलता हुआ दिखाई देता है, एक चलाता हुआ दिखाई देता है। इससे इतना तो सिद्ध है कि क्रिया का कर्त्ता होता है। लेकिन जहाँ क्रिया का कर्त्ता दिखाई नहीं देता, वहाँ भी क्रिया का कर्त्ता है यह मानने में कठिनाई होती है, विश्वास नहीं होता है। कर्त्ता तो है क्योंकि क्रिया हो रही है, क्रिया बिना कर्त्ता के होती नहीं है।

मनुष्य जब क्रिया करता है, तब वह उसके अन्दर से क्यों नहीं कर सकता? क्योंकि उसके अन्दर प्रवेश नहीं हो सकता। जहाँ क्रिया बाहर कर रहा है तो साधन से करता है और साधन दोनों के बीच में बाहर होते हैं, जहाँ क्रिया हो रही है वहाँ भी और जो क्रिया कर रहा है वहाँ भी। तो ऐसी स्थिति में जहाँ क्रिया तो हो रही है और कर्त्ता दिखाई नहीं दे रहा है वहाँ साधन नहीं है, बस इतना अन्तर है, क्योंकि उस क्रिया में कर्त्ता स्वयं विद्यमान है। इसलिये जहाँ सामर्थ्य अन्दर से प्रकट होता है वहाँ काम होता हुआ, क्रिया होती हुई दिखाई देती है। जहाँ बाहर से है तो वहाँ हमें कोई करते हुए दिखाई देता है। इस संसार में जितनी भी क्रियायें हो रही हैं, उनको कोई करता हुआ दिखाई ही नहीं दे रहा है। लेकिन, क्रिया तो बिना कर्त्ता के संभव नहीं है। क्रिया और कर्त्ता के बीच में जहाँ क्रिया दिखाई देती है वहाँ अन्तर केवल इतना है कि वहाँ बीच में साधन हमें दिखाई देता है और साधन की उपस्थिति से पता लगता है कि इसने क्रिया की और यहाँ क्रिया हुई। हमने बिजली का बटन दबाया और प्रकाश हुआ, हमने साइकिल का पैडल मारा और साइकिल चली, हमने मोटर को चलना शुरू किया मोटर चली, तो यहाँ पर हमें कर्ता और साधन अलग-अलग दिखाई देते हैं। लेकिन जहाँ साधन की आवश्यकता नहीं है, वहाँ क्रिया और कर्त्ता के बीच में दूरी नहीं है और इस दूरी नहीं होने के कारण हमें दो अलग-अलग दिखाई नहीं देते और क्रिया स्वयं होती हुई दिखाई देती है।

सूर्योदय हो रहा है, यदि मनुष्य करता तो दिखाई दे जाता कि इसका साधन क्या है। यह पृथ्वी घूम रही है, यदि किसी मनुष्य ने या किसी बाह्य शक्ति ने इसे घुमाया होता तो अवश्य दिखाई दे जाता कि कौन घुमा रहा है। इतना बड़ा जो ब्रह्माण्ड है वो गति कर रहा है, लेकिन गति को कराने वाला कोई निमित्त दिखाई नहीं दे रहा है। उसके लिए एक ही आधार कारण है कि क्रिया कहाँ से हो रही है? क्रिया बाहर से हो रही है तो अवश्य दिखाई देगी और क्रिया जब भीतर से ही रही है तो आपको कर्त्ता दिखाई नहीं देगा, क्योंकि उसे साधनों की आवश्यकता नहीं है।

ऋषि दयानन्द कहते हैं कि संसार को ईश्वर ने कैसे बनाया? हम सोचते हैं मनुष्य ने घर बनाया। कैसे बनाया? वह कहीं से पत्थर लाया, कहीं से ईंट लाया, कहीं से लोहा लाया और उसने उनको एक-दूसरे के ऊपर रखा, जोड़ा, बनाया। हमारी समझ में आ जाता है कि मनुष्य ने बनाया है। मनुष्य जो भी चीज़ बनाता है इसी तरह से बनाता है। लेकिन जब परमेश्वर बनाता है तो वह कैसे बनाता है? उसको बनाने के लिए साधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। हाथ की, पैर की, आँख की, कान की जरूरत नहीं है। वो वहाँ स्वयं है, जहाँ चाहता है, वहाँ वो बना देता है, जो चाहता है वो बन जाता है। उसकी उपस्थिति ही इसका एकमात्र कारण है जिसके कारण कर्त्ता दिखाई नहीं दे रहा है।

वेदान्त दर्शन में एक बड़ा सुन्दर प्रकरण है-इसमें कहा है कि परमेश्वर को साकार मान लें तो कठिनाई क्या है? वो कहते हैं कठिनाई तो कुछ नहीं है, लेकिन साकार वस्तु में स्वामित्व नहीं होता, स्वामित्व चेतन निराकार में है। **चेतन जो भी है, निराकार है-जीव है तो भी निराकार है, परमेश्वर है तो भी निराकार है।** जो निराकार और चेतन है वो स्वामी है। जो साकार है, वो जड़ है और आधीन है। इसलिए संसार स्वामी नहीं है, संसार किसी के आधीन है। घर मेरी इच्छा से

बना है, मेरी इच्छा से मैं उसको चलाता हूँ। मेरे आधीन है, तो उसको मैं अपनी इच्छा के अनुसार चला पाता हूँ। मेरी उपस्थिति है जिसके कारण वो चल रहा है। यदि मेरी वहाँ से अनुपस्थिति हो जाए तो उसका चलना भी बन्द हो जाएगा, उसकी व्यवस्था भी समाप्त हो जाएगी। संसार में जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ की मैं व्यवस्था करता हूँ, वहाँ के बारे में मैं जानता हूँ, वहाँ पर मेरा निर्देश, मेरा शासन चल रहा है, लेकिन जिस दिन मैं उस स्थान को छोड़ दूँगा, उस दिन मेरी व्यवस्था का वहाँ कुछ भी अता-पता नहीं होगा, वहाँ मेरे आदेश निर्देशों के लिए कोई स्थान भी नहीं होगा। वो परिस्थिति बता रही है कि मैं वहाँ हूँ या मैं वहाँ नहीं हूँ।

स्वामित्व जड़ में संभव नहीं है। उसी तरह से क्रिया के लिए वस्तु कर्त्ता के आधीन होती है, तब क्रिया हो पाती है। वो अधीनता चाहे साधनों के माध्यम से प्राप्त हो या वो अधीनता बिना साधनों के प्राप्त हो। अधीनता साधनों के माध्यम से प्राप्त होती है यह तो हमको दिखाई देती है, लेकिन बिना साधनों के प्राप्त होती है, यह कैसे हो? यह परमेश्वर में होती है, क्योंकि परमेश्वर की उपस्थिति जो है। उसको साधन की आवश्यकता नहीं है। जैसे मैं किसी वस्तु को उठाकर रखना चाहता हूँ तो उसको मेरे हाथ की सीमा में होना चाहिए, भले ही वो वस्तु क्रेन से मैं उठाता हूँ, तो अपने हाथ से उठाता हूँ। इसलिए जो काम मैं करना चाहता हूँ, उसको मेरे वश में होना चाहिए, मेरे हाथ में होना चाहिए या मेरे आदेश में होना चाहिए। जब तक वो मेरे हाथ में नहीं है, मैं उसको कर ही नहीं सकता। संसार की हर वस्तु उस परमेश्वर के हाथ में है, इसलिए जिस भी वस्तु का जो भी उपयोग वो करना चाहता है, उसको सहज कर सकता है। इसके लिए यहाँ उसके सामर्थ्य को हम देखते हैं और कह उठते हैं-

ओ३म् क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, उसके सामर्थ्य को देखो, उसके ऐश्वर्य को देखो, उसके स्वरूप को देखो।

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि
मन्त्री, परोपकारिणी सभा

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

लाला तोलाराम कौन थे?- यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस गये बीते युग में भी आर्यसमाज में अभी बहुत से जागरुक सिद्धान्तनिष्ठ सज्जन हैं। 'परोपकारी' के जुलाई मास के दूसरे अंक में श्री मास्टर आत्माराम अमृतसरी पर लिखते हुये उस युग के कई 'रामों' का नामोल्लेख किया था, जिन्होंने आर्य धर्म के प्रचार की धूम मचा रखी थी। ऐसे रामों में एक लाला तोलाराम जी का नाम भी दिया गया। एक मान्य आर्य भाई की शंका मिली है कि तब तोताराम तो थे, लाला तोलाराम नाम का कोई प्रमुख आर्यसमाजी नेता तो नहीं हुआ। इस शंका का स्वागत करते हुये उस आर्य भाई को धन्यवाद देना लेखक अपना कर्त्तव्य मानता है।

तोलाराम जी आरम्भिक युग में 'आर्य पत्रिका' के उप-सम्पादक थे। सत्यार्थप्रकाश के उर्दू के ऐतिहासिक संस्करण के सुन्दर प्रकाशन का मुख्य श्रेय तब आप ही को दिया गया। आप प्रूफ़ पढ़ने में बहुत दक्ष माने जाते थे। समाज को बहुत समय देते थे। अथक सेवक थे। उस काल के पत्रों व डायरैक्टरियों में आपकी पर्याप्त चर्चा है।

सिद्धान्त चर्चा- महर्षि के जीवनकाल में बाइबिल की उत्पत्ति की पुस्तक में वर्णित इस वाक्य पर पहली बार ऋषि की कोटि के विचारक ने प्रश्न उठाया, "he rested from all his work which God had created and made." सातवें दिन थक टूटकर ईश्वर ने विश्राम किया-इस पर ऋषि जी की समीक्षा को तो सब जानते हैं, परन्तु महर्षि ने इसका खण्डन करते हुये बाइबिल से ही एक अद्‌भुत प्रमाण सुझाया। इस प्रमाण की आर्य लोगों ने कभी विशेष चर्चा नहीं सुनी। "He will not grow tired or weary."[१] अर्थात् वह प्रभु कभी न थकता है और न टूटता है। यहाँ बाइबिल में वेद की ऋचाओं की गूञ्ज सुनाई देती है। बाइबिल के इस कथन का वेद मन्त्रों से मिलान करके धुआँधार प्रचार होना चाहिये।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त को कभी सारा संसार मानता था। अब तो जो कोई भी पूर्वजन्म व पुनर्जन्म को मानता है, मुसलमान उसे काफ़िर मानते हैं। पं. लेखराम जी का कथन है कि पुराने भवन ढह जाते हैं तो उसी गिरे हुये भवन की सामग्री से नये मकान बना दिये जाते हैं। पण्डित लेखराम जी के पुनर्जन्म पर लिखे मौलिक ग्रन्थ को पढ़कर कभी देहली के मौलाना महबूब अली ने 'कुरान के अनुसार पुनर्जन्म' नाम की एक उत्तम पुस्तिका प्रकाशित करवाई थी। अब आर्यसमाज विधर्मियों तक अपना ठोस व मौलिक साहित्य पहुँचाये तो वैसे ही परिणाम अवश्य मिल सकते हैं।

एक मौलाना ने ईश्वर की सत्ता व स्वरूप पर एक भरी सभा में सजीव शब्दों में कहा-तारासमूह (galaxy) में से होकर तारासमूह तीव्र गति से निकल रहे हैं, परन्तु टकराते नहीं। दुर्घटना नहीं होती। यह अल्लाह की सत्ता व व्यवस्था का प्रमाण है।

मेरी बारी आई तो मैंने कहा, मैं वेदानुसार क्या कहूँ? मौलाना वेद का डंका बजा गये। उन्होंने जो कुछ कहा उसके लिये कुरान से कोई प्रमाण नहीं दिया। तारासमूह की तीव्रगति से दौड़ की बात वह ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका से अपने शब्दों में सुनाकर तालियाँ बजवा गये। कुरान में तो ग्रहों-उपग्रहों के दौड़ लगाने की कोई आयत है नहीं।

तुलनात्मक अध्ययन करके पं. चमूपति जी, पं. लक्ष्मण जी, पं. शान्तिप्रकाश जी और पं. धर्मदेव जी सरीखे बीसियों वक्ता व विद्वान् चाहिये। अपने लिये विशेषणों का प्रयोग करवाकर कोई भी वक्ता विरोधियों विधर्मियों को नहीं खींच सकता।

इतिहास का नया स्वर्णिम अध्याय- आर्य जनता को यह जानकर बहुत गौरव होगा कि विघटन के इस युग में पूजनीय पं. गंगाप्रसाद जी के तपोबल से आर्यसमाज के इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्वर्णिम अध्याय जुड़ रहा है। इस समाचार की सुगन्धि प्रयाग पहुँचते देर नहीं लगी। वहाँ से वयोवृद्ध विद्वान् श्यामकिशोर जी ने आज्ञा दी है कि यह शुभ समाचार सुनने को हम लालायित हैं।

आर्यसमाज में १२५ वर्ष तक हमारे पूजनीय विद्वानों का एक ही लेख संग्रह अधिक चर्चा में रहा और वह भी

संग्रहीता के जीवन-काल में दूसरी बार नहीं छपा। एक ही भाग बड़ी कठिनाई से छपता रहा। अब १४३ वर्ष पश्चात् पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के साहित्य का संग्रह 'गंगा ज्ञान सागर' चारों भाग तीसरी बार छपकर आपके हाथों में आने वाला है।

इसका कमाल यह भी है कि इसका पहला ही भाग 'दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह' से विविधता व पृष्ठों की दृष्टि से कहीं बड़ा है।

यह ग्रन्थ संग्रह अपने सम्पादक अनुवादक के जीवनकाल में तीसरी बार छपने का कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। ईश्वर की कृपा बनी रहे। लेखक को अपने जीवनकाल में इसके चौथे संस्करण का प्रकाशन देखने का भी सौभाग्य प्राप्त होगा।

आप प्रश्न पूछेंगे कि यह इतना बड़ा कार्य कौन करने जा रहा है? सम्भव है परोपकारी में यह लेख छपने तक कुछ सज्जनों को इसकी भनक पड़ गई हो। आर्यजगत् के इतिहास पुरुष श्रीमान् लाला गोविन्दराम जी के सुपौत्र प्रिय अजय आर्य जी के पुरुषार्थ से यह स्वर्णिम अध्याय इतिहास में जुड़ रहा है।

इसके साथ ही पाठक यह नोट कर लें कि कई प्रादेशिक भाषाओं में भी यह ग्रन्थमाला पूरी अथवा आंशिक छपती जा रही है। इस उपलब्धि पर सारा आर्यजगत् इतराने का अधिकार रखता है। यह उपाध्याय जी की तपस्या का फल तो है ही। हमारे सब दिवंगत बलिदानियों व साहित्य सेवी विद्वानों के आशीर्वाद से ही श्री अजय जी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाने का जोखिम उठाया है।

है सरल हर बात कहना, है कठिन कुछ कर दिखाना।
राह पर चलना कठिन है, क्या कठिन बातें बनाना।।

इसका पूरक समाचार जनता को कुछ सप्ताह में सुनने को मिलेगा।

रमाबाई पर भ्रामक लेख- किसी ने हिण्डौन से छपने वाले 'वैदिक पथ' मासिक में श्री चतुरसेन शास्त्री के रमाबाई विषयक लेख की ओर ध्यान दिलाया है। चतुरसेन जी अनुभवी लेखक थे यह ठीक है। वह लिखते किस प्रयोजन से थे यह हम क्या बतायें। श्री रमेश जी मल्होत्रा और गोविन्दराम हासानन्द के पूर्व मैनेजर से हमने भी खूब सुना है।

ज्वलन्त जी की इस लेख को देने की कुछ विवशता होगी। पं. इन्द्रजी के अनुसार जिस रमाबाई ने ५०००० हिन्दू देवियों को ईसाई बना दिया, उसको आर्यसमाज के पत्रों में महिमामण्डित करने की क्या आवश्यकता पड़ गई? हमने श्री कुशलदेव जी को भी पण्डिता रमाबाई की प्रशंसा करने में किसी सीमा का ध्यान रखने को कहा था। ज्वलन्त जी व उनके सहयोगियों ने तथ्यों का मिलान किये बिना यह लेख छाप दिया है। एक मास तक वह मेरठ नहीं रुकी थी। रानाडे ने समाज-सुधार, विधवा-उद्धार की बहुत बातें कीं, परन्तु अपनी पत्नी के निधन पर एक छोटी-सी अल्पायु बाली कन्या से विवाह रचाकर अपने आदर्शों की मिट्टी कूट दी। अमेरिका द्वारा पूना के 'सेवा सदन' की आर्थिक सहायता का प्रयोजन लेख में बताना चाहिये था। महाराष्ट्र के नेता रमाबाई को धर्मच्युत होने से न बचा सके। वे सब भी दोषी थे।

महात्मा मुंशीराम जी ने रमा पर क्या लिखा, यह तो कभी आर्य पत्रों में कोई लिखता नहीं। रमाबाई ने अपने जीवन के प्रसंग सुनाते हुये मैक्समूलर को ऋषि जी के बारे में एक भी शब्द नहीं कहा या फिर मैक्समूलर ने रमाबाई की प्रशंसा के पुल बाँधते हुये महर्षि दयानन्द पर अपनी अन्तिम पुस्तक के रमा पर लिखे लेख में एक शब्द नहीं आने दिया। विदेशी-विधर्मी लेखक कितने चतुर मिशनरी हैं और आर्यसमाजी तो बस यह दिखाना चाहते हैं कि हमारी जानकारी बहुत विस्तृत है। मिशन का गौरव मुख्य होना चाहिये। अपनी वाह! वाह! गौण ही रहे तो ठीक है।

रमाबाई किस उद्देश्य से मेरठ आई थी, यह 'वैदिक पथ' के सम्पादक जी को बताना चाहिये था। ऋषि तो मिशन के लिये नगर-नगर डगर-डगर भटक रहे थे। रमाबाई का उद्देश्य लोकोपकार नहीं-अपना विवाह था। इस प्रयोजन की सिद्धि में महर्षि दयानन्द जी को घसीटना उचित नहीं था। न जाने फिर माधवाचार्य जैसे पोंगापंथी क्या-क्या टिप्पणियाँ करते।

ऋषि की मर्यादा-पालन में दृढ़ता तो देखें। आपने कभी ग्रुप फोटो में किसी महिला को बैठने की अनुमति नहीं दी। गुरदासपुर (पंजाब) में व जबलपुर के ग्रुप फोटो

घरों में ही लिये गये। तब दोनों घरों में देवियाँ भी थीं। बड़ौदा की राजमाता की विनती उनके सचिव से सुन ली, परन्तु राजमाता को उपदेश सुनने के लिये समय नहीं दिया। ज्वलन्त जी इन घटनाओं को बहुत गहराई से समझते हैं। ऋषि- जीवन में जिसकी भी चर्चा दिख जावे, कुछ भाई उसे आगे करके ऋषि को व मिशन को गौण बना देते हैं। देश की हत्या करवाने वाले सर सैयद अहमद के भक्त प्रशंसक यह क्यों नहीं बताना चाहते कि पाकिस्तान बनाने का बीज इस भक्त प्रशंसक के हाथों से ही अंग्रेज़ों ने बिजवाया था।

मदनलाल ढींगरा खत्री नहीं था- एक प्रेमी ने 'स्वस्ति पन्था' मासिक के जुलाई के अंक में डॉ. भारतीय जी के वीर मदनलाल ढींगरा पर छपे लेख को पढ़कर पूछा है, क्या आपने कभी सुना या पढ़ा है कि मदनलाल ढींगरा खत्री परिवार में जन्मे थे? उक्त पत्र के पाँच सम्पादक हैं, परन्तु यह प्रश्न हमारे पास भेजा गया है। लगता है कि प्रश्नकर्त्ता जानता है कि जो कुछ उसने पढ़ा है वह मनगढ़न्त है।

जिस विषय का ज्ञान ना हो उस पर लिखने व बोलने से बचना चाहिये। एक-दो पुस्तकें सामने रखकर नया लेख लिखने से कोई इतिहासज्ञ नहीं बन जाता। यह कथन भी ऐसा ही है जैसे स्वामी सत्यप्रकाश जी को आनन्द स्वामी जी से संन्यास दिलवा दिया। हम जातिवादी नहीं। कोई ढींगरा जी को यादव, जाट या ब्राह्मण लिख दे तो इससे क्या बनता-बिगड़ता है? फिर भी मनगढ़न्त इतिहास गढ़ने से बचना चाहिये। जिस बिरादरी से वीरवर ढींगरा का सम्बन्ध है, अबोहर फ़ाजिल्का उसका गढ़ है। वह अरोड़वंशी थे। श्री पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, डॉ. गोकुलचन्द नारंग, मेहता आनन्द किशोर और महाशय जैमिनि, सरशार उसी बिरादरी के नररत्न थे। भूल का शूल चुभना ठीक नहीं। इतिहास-प्रदूषण करने से बचना चाहिये। यह पाप कर्म है।

मैक्समूलर के ये शब्द पढ़िये- रमाबाई का गुणकीर्तन करते हुये वह लिखता है, " Her brother died, and from sheer necessity she had to take a husband." भाई के निधन के पश्चात् उसे पति लेना पड़ा और वह १९ मास में ही चल बसा। यह तो ठीक है, परन्तु भाई के निधन के पश्चात् मेरठ यात्रा का संकेत तक न करना, यह अकारण नहीं हो सकता। मैक्समूलर ने ही लिखा है, ''and we are now told that all Indians are liars.'' अब हमें बताया जाता है कि सब भारतीय झूठे हैं। इसके साथ ही यह लिखा है ''The end of all the Vedas is Truth.'' आश्चर्य की बात तो यह है कि मैक्समूलर को ऋषि कोटि का बताते समय स्वामी विवेकानन्द जी को इस जातीय अपमान पर कुछ लिखने का साहस न हुआ।

My Indian Friends के पृष्ठ ५४ पर श्रीकृष्ण पर प्रहार करते हुये मैक्समूलर का कमाल देखिये, ''the story of a god who carries off the cloths of the sheperdesses while bathing, is not edifying.'' ऐसे घृणित वाक्य लिखते हुये साम्राज्य व सूली के इस चाकर को, ''**वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।**'' श्रीकृष्ण का सदाचार की शिक्षा का यह अमृत वचन क्यों भूल गया? ऐसे अमृत वचन सुनाने वाला क्या गोपियों के वस्त्र उठाता, चुराता था?

किसी ने इस पुस्तक पर परोपकारी में हमारी टिप्पणियाँ पढ़कर लिखा है कि इस पुस्तक को वह (या उन जैसे और भी कुछ) जानते थे, फिर चुप्पी क्यों साधे रहे। प्रतिवाद-खण्डन क्यों न किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी का लेख पढ़कर हमने इसकी शव-परीक्षा करने की ठानी। किसी हिन्दू में धर्म-रक्षा की अग्नि होती तो 'कल्याण' जैसे पत्र में कभी तो कुछ लिखता। अब तो 'गोधन मासिक' को भी जड़-पूजा, बहुदेवतावाद का पत्र बना दिया गया है।

श्रद्धाराम फिल्लौरी की आड़ लेकर- एक नास्तिक कामरेड ने श्रद्धाराम फिल्लौरी की आड़ लेकर महर्षि दयानन्द जी पर तो पुनः घिसा-पिटा प्रहार किया ही है, तथाकथित हिन्दू धर्म या सनातन धर्म की भी मिट्टी कूटने में कोई कमी नहीं छोड़ी। 'श्रद्धाराम फिल्लौरी ग्रन्थावली' दिल्ली के एक हिन्दू प्रकाशक ने प्रकाशित की है। दिखने में पौराणिक हिन्दू धर्म की प्रसिद्ध आरती के रचयिता का साहित्य प्रकाशित करके हिन्दू धर्म को महिमामण्डित किया जा रहा है। महर्षि दयानन्द की निन्दा करके कुछ अज्ञानियों के कलेजे ठण्डे हो जायेंगे, परन्तु ध्यान से पढ़िये तो पता चलेगा कि श्रद्धाराम की यह सारी ग्रन्थावली उसी की पोल

खोल रही है। उसका निज मत कुछ था ही नहीं। इस ग्रन्थावली में वह आप ही अपनी एक-एक बात का प्रतिवाद करता जाता है।

महर्षि दयानन्द को उसे कोसता दिखाया गया है। उससे कहीं अधिक उसने अपने आपको कोसा है। उसने अपने अन्त समय के एक पत्र में (मूल अजमेर में सुरक्षित है) महर्षि का जी भरकर गुणकीर्तन किया है। **''हम न घर के रहे, न घाट के'' यह लिखकर अपने भाग्य को कोसा है। वह हताश, निराश व उदास, संसार से दुःखी गया।**

'सत्यामृत प्रवाह' ग्रन्थ में नास्तिकता का ध्वजवाहक बना, परन्तु जीते जी यह ग्रन्थ छपने न दिया। सिख गुरुओं की निन्दा करने पर जब सिख हत्या करने पर तुल गये तो अंग्रेजों की कृपा से अमृतसर से सुरक्षित निकल पाया।[२] **इसी ग्रन्थावली में पृष्ठ १४ पर उसे एकेश्वरवादी बताया गया है और पृष्ठ ३३१-६०७ तक नास्तिकता की पुष्टि में ग्रन्थ रत्न 'सत्यामृत प्रवाह' दिया है।**

सागर में सर कोऊ ढूंढत काठ पाषानन में कोऊ टाले
जो 'श्रद्धा' करके लिखिये तब है सब में सबको प्रतिपाले

इन दो पंक्तियों में मूर्तिपूजकों का महानायक पत्थर-पूजा का खुलकर खण्डन करता है। जीवनभर ईसाई मिशन की अंग्रेज़ों की चाकरी करता रहा। हम ऐसे महाज्ञानी के बारे क्या लिखें? **'असूले मज़ाहब'** ग्रन्थ सन् १८९६ में छपा। सर रॉबर्ट अजर्टन गवर्नर पंजाब की प्रेरणा से फ़ारसी ग्रन्थ **'दबिस्ताने मज़ाहब'** का यह अनुवाद पण्डित जी ने पूरा कर दिया। कोई बतावे इसमें हिन्दू धर्म की महिमा में क्या है? निन्दा तो अवश्य है। सिख यदि इसे पढ़ लें तो श्रद्धाराम की जान को रोवें। अन्धविश्वासों को अवश्य महिमामण्डित किया गया है। **'सत्यामृतप्रवाह' में लिखा है, ''वेद में निर्णय किसी बात का नहीं किया, केवल प्रतिज्ञा मात्र कथन है।[३]'' दर्शनों में विरोध भी दर्शा दिया। पृष्ठ ४८४ पर मूर्तिपूजा का भी उपदेश है। 'ईसा ईसा बोल' भजन पैसे लेकर ईसाइयों के लिये रचा था। इसमें ईसा को ही राम व कृष्ण बता दिया। यह ईसाइयों के पैसे का चमत्कार ही तो था।**

कुम्भ मेले पर महर्षि को मरवाने के षड्यन्त्र रचे गये और इस ग्रन्थ में **महर्षि द्वारा दिये गये प्रमाणों व तर्कों से वेद को ईश्वरीय वाणी भी सिद्ध किया गया है। ऋषि का जादू सिर चढ़कर बोला।**

''संसार में मर्यादा को स्थिर रखने के लिये परोक्ष परमेश्वर का भय और लालच जगत् के सिर पर ठहिराया हुआ है।'' यह भी लिखा है। **''देह से भिन्न जीव कुछ वस्तु नहीं।''**

''स्वाभावज सृष्टि पदार्थों के रासायनिक संयोग और स्वभाव से ही प्रकट हो जाती है।''

इससे बढ़कर नास्तिकवाद और क्या है?

पं. श्रद्धाराम के निधन के पश्चात् उनकी पण्डितानी महताब कौर भी अंग्रेज सरकार की कृपापात्र बनी रही।

वेदपथिक धर्मपाल जी मेरठ ने यह ग्रन्थावली उपलब्ध करवाई। यदि कुछ आर्य युवक व्यवस्था कर सकें तो इसके उत्तर में-खण्डन में १५० पृष्ठ की एक पुस्तक लिखी जा सकती है। श्रद्धाराम भटक-भटक कर भ्रमित हो गया। उसका कोई सिद्धान्त था ही नहीं।

टिप्पणी

१. दृष्टव्य अमेरिका से प्रकाशित बाइबिल का सन् २००६ का नवीनतम संस्करण Isaiah ४०-२८ पेज १०७९

२. देखिये श्रद्धाराम फिल्लौरी ग्रन्थावली पृष्ठ ९

३. द्रष्टव्य ग्रन्थावली का पृष्ठ ४७९

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

ओ३म्

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राज.) पिन. ३०५००१ दूरभाष– ०१४५–२४६०१६४

वेदगोष्ठी–२०१८

मान्यवर सादर नमस्ते।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ सानन्द होंगे। आपको सुविदित है कि सद्भावी विद्वानों के सहयोग से सदा की भांति इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली तथा अनुसंधान विभाग परोपकारिणी सभा, अजमेर के संयुक्त तत्त्वावधान में ऋषि मेले के अवसर पर वेदगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध–पत्र परोपकारी व वेदपीठ की शोध–पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे जो लोग गोष्ठी में नहीं आ सकते वे भी लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है। गत ३० वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। अब तक निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा चुका है:–

१. ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली।	**१२ नवम्बर, १९८८**
२. वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	**०५ नवम्बर, १९८९**
३. अथर्ववेद समस्या और समाधान।	**२७ नवम्बर, १९९०**
४. वेद और विदेशी विद्वान्।	**१६ नवम्बर, १९९१**
५. वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	**०१ नवम्बर, १९९२**
६. वेदों के दार्शनिक विचार।	**२८ नवम्बर, १९९३**
७. सोम का वैदिक स्वरूप।	**१२ नवम्बर, १९९४**
८. पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान।	**०३ नवम्बर, १९९५**
९. वैदिक समाज व्यवस्था।	**०१ नवम्बर, १९९६**
१०. वेद और राष्ट्र।	**२४ अक्टूबर, १९९७**
११. वेद और विज्ञान।	**०९ अक्टूबर, १९९८**
१२. वेद और ज्योतिष।	**१० नवम्बर, १९९९**
१३. वेद और पदार्थ विज्ञान	**०३ नवम्बर, २०००**
१४. वेद और निरुक्त	**१८ नवम्बर २००१**
१५. वेद में इतिहास नहीं	**०१ नवम्बर २००२**
१६. वेद में कृषि व वनस्पति विज्ञान	**३१ अक्टूबर २००३**
१७. वेद में शिल्प	**१९ नवम्बर २००४**
१८. वेदों में अध्यात्म	**११ नवम्बर, २००५**
१९. वेदों में राजनीतिक चिन्तन	**२७ नवम्बर, २००६**
२०. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है	**१६ नवम्बर, २००७**
२१. वैदिक समाज विज्ञान	**०५ नवम्बर, २००८**
२२. सत्यार्थप्रकाश का ७ वाँ समुल्लास व वेद	**२३ अक्टूबर, २००९**
२३. सत्यार्थप्रकाश का ८ वाँ समुल्लास व वेद	**१२ नवम्बर, २०१०**
२४. सत्यार्थप्रकाश का ९ वाँ समुल्लास व वेद	**०४ नवम्बर, २०११**
२५. महर्षिदयानन्दाभिमत मन्तव्य: वैदिक परिप्रेक्ष्य	**१६ नवम्बर, २०१२**
२६. वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास	**८ नवम्बर, २०१३**
२७. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**३१ अक्टू. १,२ नव., २०१४**
२८. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**२०,२१,२२ नव., २०१५**
२९. दयानन्द दर्शन की वेदमूलकता	**४,५,६ नव., २०१६**
३०. वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त	**२७,२८,२९ अक्टू., २०१७**

।। ओ३म्।।

वेद गोष्ठी २०१८ के लिए निर्धारित विषय

षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द

उपशीर्षक :

०१. वेदों में दर्शन तत्त्व की विवेचना
०२. वेदों में षड्दर्शनों के मूलतत्त्व की मीमांसा
०३. महर्षि दयानन्द के चिन्तन में षड्दर्शनों की वेदमूलकता
०४. षड्दर्शनों में ईश्वर-विचार और उनकी वेदमूलकता
०५. षड्दर्शनों में प्रमाण-विचार और महर्षि दयानन्द
०६. षड्दर्शनों में जगत् का सम्प्रत्यय और उसकी वेदमूलकता
०७. षड्दर्शनों में जीव सिद्धान्त या जीवात्मा का सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
०८. षड्दर्शनों की वेदमूलकता और मुक्ति विचार के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द
०९. षड्दर्शनों की वेदमूलकता प्रत्यक्ष प्रमाण के सन्दर्भ में- एक विवेचना
१०. षड्दर्शनों में अनुमान प्रमाण की वेदमूलकता का समीक्षात्मक विशेषण
११. षड्दर्शनों में बन्धन का सिद्धान्त और वेदमूलकता
१२. वेदों के सन्दर्भ में षड्दर्शनों की प्रमुख मान्यताएँ और महर्षि दयानन्द
१३. षड्दर्शनों में मोक्ष प्राप्ति के साधन और महर्षि दयानन्द
१४. षड्दर्शनों में सत् के स्वरूप की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१५. षड्दर्शनों में कर्म सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
१६. षड्दर्शनों में पदार्थ विवेचन और महर्षि दयानन्द
१७. षड्दर्शनों में ब्रह्म एवं जीव सम्बन्धों की विवेचना की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१८. षड्दर्शनों के समन्वय की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१९. षड्दर्शनों में वेद विचार और महर्षि दयानन्द
२०. षड्दर्शनों में त्रैतवाद की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
२१. महर्षि दयानन्द के अनुसार षड्दर्शनों का समन्वय
२२. वैशेषिक दर्शन की वेदमूलकता
२३. न्याय दर्शन की वेदमूलकता
२४. सांख्य दर्शन की वेदमूलकता
२५. योग दर्शन की वेदमूलकता
२६. मीमांसा दर्शन की वेदमूलकता
२७. वेदान्त दर्शन की वेदमूलकता
२८. वेदान्त दर्शन में वर्णित ब्रह्म के स्वरूप की वेदमन्त्रों से पुष्टि।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

०१. षड्दर्शन समन्वय- श्री प्रशान्त आचार्य
०२. आचार्य उदयवीर शास्त्री का षड्दर्शन भाष्य एवं विवेचना ग्रन्थ
०३. योग दर्शन भाष्य-पं. राजवीर शास्त्री
०४. स्वामी ब्रह्ममुनि के दर्शन भाष्य
०५. स्वामी दर्शनानन्द जी के दर्शन भाष्य
०६. भारतीय दर्शन (दो भाग)- डॉ. राधाकृष्णन्
०७. महर्षि दयानन्द सरस्वती के समस्त ग्रन्थ
०८. दर्शन तत्त्व विवेक- आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
०९. षड्दर्शन समन्वय-पं. विद्यानन्द शर्मा
१०. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण- एम. हिरियन्ना
११. भारतीय दर्शन-एस.एन. दासगुप्त
१२. भारतीय दर्शन-दन्त एवं चटर्जी
१३. भारतीय दर्शन- एन.के. देवराज
१४. भारतीय दर्शन-जी.डी. शर्मा
१५. भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र
१६. भारतीय दर्शन-बलदेव उपाध्याय
१७. सिक्स सिस्टम ऑफ इण्डियन फिलॉस्फी- एफ. मैक्समूलर
१८. रिचर्ड गार्वे- सांख्य फिलॉस्फी

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास में प्रयोग किया गया हिन्दी कुरान

मोहनचन्द

सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास में जिस कुरान की आयतों या आयतांशों का उल्लेख हुआ है, उस हिन्दी कुरान का नामोल्लेख इस कुरान के मुखपृष्ठ पर इस प्रकार है–'कलामुल्लाह वा कुरान'। यह कुरान हस्तलिखित है। इसकी कुल पृष्ठ संख्या ७२५ है। इस कुरान के अन्त में संस्कृत में लिखा गया यह वाक्य है–

'सं. १९३५ कार्तिक भु. ९ रविवासरे कुराणाख्योयं ग्रन्थः संपूर्णः।। इन्द्रप्रस्थ नगरे।।'

इस कुरान के अनुवादक कौन हैं इसका कुछ भी उल्लेख इस कुरान में नहीं है किन्तु यह इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली में लिखा गया था यह स्पष्ट है। यह कुरान के हिन्दी अनुवाद का हस्तलेख परोपकारिणी सभा के हस्तलेख ग्रन्थों में विद्यमान है।

ईसाइयों की धर्मपुस्तक बाइबिल (प्रोटेस्टेंट) के पादरियों द्वारा किए हुए हिन्दी अनुवाद ऋषि दयानन्द के समय में छप गये थे। अतः उसकी समीक्षा करने में उन्हें कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। कुरान का हिन्दी अनुवाद उस समय नहीं हुआ था। अतः मुसलमानों के मत की समीक्षा के लिये उसका हिन्दी अनुवाद आवश्यक था। महर्षि दयानन्द, उर्दू, अरबी, अथवा फारसी नहीं जानते थे, अतएव उन्होंने सर्वप्रथम कुरान का हिन्दी में अनुवाद करवाया। यह अनुवाद किससे करवाया, यह विदित नहीं होता, परन्तु महर्षि दयानन्द के एक पत्र से विदित होता है कि इस अनुवाद का संशोधन मुन्शी मनोहरलाल जी रईस गुड़हट्टा, पटना निवासी ने किया था। मुन्शी जी अरबी, फारसी के अच्छे विद्वान् थे। मुन्शी मनोहरलाल जी से स्वामी जी का पुराना परिचय था। सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण सं. १९३१ के लिये कुरान मत की समीक्षा का जो १३ वाँ समुल्लास लिखा था (प्रथम संस्करण में १३ वाँ समुल्लास कुरान की समीक्षा का है)वह सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में किन्हीं कारणों से नहीं छपा था। इसका हस्तलेख सभा के हस्तलिखित ग्रन्थों में विद्यमान है। इस १३ वें समुल्लास के विषय में स्वामी जी ने इस प्रकार लिखा था–

''जितना हमने लिखा है इसको यथावत् सज्जन लोग विचार करें, पक्षपात छोड़ के तो जैसा हमने लिखा है वैसा ही उनको निश्चित होगा। यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है सो पटना शहर ठिकाना गुड़हट्टा में रहने वाले मुन्शी मनोहरलाल जी जो कि अरबी में भी पण्डित हैं उनके सहाय और निश्चय करके कुरान के विषय में हमने लिखा है इति।''

(पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४३, टि. १ पं. २४–२८)

सम्पूर्ण कुरान का हिन्दी अनुवाद सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द द्वारा ही कराया गया था। यह सं. १९३५ अर्थात् सन् १८७८ का है। इससे एक वर्ष पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा भी कुरान का हिन्दी अनुवाद करवाया गया था, किन्तु वह अनुवाद कुरान के प्रारम्भिक स्वल्प भाग का था, परन्तु महर्षि दयानन्द का करवाया गया अनुवाद पूरे कुरान का है। महर्षि दयानन्द इस कुरान के हिन्दी अनुवाद को छपवाना चाहते थे। ऋषि दयानन्द ने २४ अप्रैल १८७९ के पत्र में दानापुर के बाबू माधोलाल को लिखा था–**''कुरान नागरी में पूरा तैयार है, परन्तु अभी तक छापा नहीं गया।''** स्मृतिशेष डॉ. धर्मवीर जी ने भी इसके छपवाने का कार्य प्रारम्भ किया था पर वह पूर्ण न हो सका।

मुसलमान महाशयों की ओर से बहुधा यह कहा जाता है कि 'सत्यार्थप्रकाश' के १४ वें समुल्लास में कुरान की कई आयतों का अनुवाद यथार्थ व युक्त नहीं है। आयतों की संख्या भी बहुत स्थानों पर भ्रान्त है। (सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय सं. में आयतों की संख्या में दो- चार के आगे-पीछे का अन्तर होना संभव है, इसका उल्लेख मुंशी समर्थदान ने सत्यार्थप्रकाश द्वितीय सं. की सूचना में कर दिया था।)

इस कुरान के हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में श्री पं. रामचन्द्र जी देहलवी जो कुरान के विशेषज्ञ थे **'सत्यार्थप्रकाश चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतें'** नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखते

हैं-

''मैंने इस बात की सत्यता को परखने के लिये १४ वें समुल्लास का बहुत ध्यान से निरीक्षण किया, परन्तु सिवाय कुछ आयतों की संख्या सम्बन्धी भूलों के अर्थ सम्बन्धी ऐसी कोई भूल नहीं पाई गई जिससे समीक्षा में कुछ अनुचित या इस्लामी सिद्धान्तों के विरुद्ध आक्षेप हो गया हो। समीक्षा अद्भुततया सत्य व अपरिहार्य है।''

इस समुल्लास में दिया हुआ आयतों का आर्यभाषानुवाद शाह रफीउद्दीन साहब देहलवी के उर्दू तर्जुमे से किया हुआ प्रतीत होता है, जो, बेमुहावरा होने से आर्य-भाषा की प्रचलित पद्धति की दृष्टि से असम्बद्ध अथवा बेजोड़ है। विरामों के न होने से भाषा कई स्थानों पर अनर्थक-सी प्रतीत होती है। इसलिये आर्य-भाषा में अनुवाद करने वाले ने अर्थ की संभवता व सार्थकता को दृष्टि में रखते हुए विरामों की कल्पना कर ली है। जहाँ-जहाँ भेद हुआ है उसका निराकरण नीचे कर दिया गया है (यह निराकरण कृपया देहलवी जी की उक्त पुस्तक में अथवा रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश शताब्दी संस्करण द्वितीय-परिशिष्ट में देखें।)

महर्षि दयानन्द द्वारा हिन्दी में अनुवाद करवाये इसी कुरान से आयत या आयतांश उद्धृत करके सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास में उनकी समीक्षा की गई है, जिन आयतों और आयतांशों को उद्धृत कर उनकी समीक्षा सत्यार्थप्रकाश में की गई है, ऐसी आयतों व आयतांशों के सम्मुख उक्त हिन्दी कुरान के हस्तलेख में + का चिह्न अंकित किया हुआ है। महर्षि द्वारा सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत अन्य ग्रन्थों के उद्धरणों के सम्मुख भी तत् तत् ग्रन्थ में ऐसा ही + का चिह्न अंकित है जैसे कि महर्षि द्वारा प्रयोग में ली गई बाइबिल, मनुस्मृति, योगदर्शन, प्रकरण रत्नाकर आदि विभिन्न ग्रन्थ। ये ग्रन्थ सभा के पुस्तकालय में विद्यमान हैं।

इस संशय के निवारणार्थ कि सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतें इस हिन्दी में अनुवादित कुरान से नहीं ली गई हैं अब हम सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत कुरान की कुछ आयतों या आयतांशों और उक्त हिन्दी कुरान में दी गई आयतों का नीचे तालिका में तुलनात्मक उल्लेख करते हैं जिससे स्पष्ट हो जायेगा कि सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत आयतें इसी हिन्दी कुरान से उद्धृत की गई हैं।

१. हिन्दी कुरान- आरम्भ साथ नाम परमेश्वर के, क्षमा करने वाला, दयालु।। मं. १ सि. १ सू. १

सत्यार्थ प्रकाश मूल हस्तलेख- मैं आरम्भ करता हूँ साथ नाम अल्लाह के वह क्षमा करने वाला और दयालु है। मं. १ सि. १ सू. १

सत्यार्थ प्रकाश प्रेस कॉपी- मूल हस्तलेख जैसा ही पाठ है।

सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय संस्करण- आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु।
म. १ सि. १ सू. १

२. हि. कु.- सब स्तुति ईश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालने हारा **है सब** संसार का।। १।। क्षमा करने वाला दयालु।। २।।

स.प्र.मूल ह.- सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालने हारा है संसार का। क्षमा करने वाला दयालु है। म. सि. सूरतुल्फातिहा। आयत १/२

स.प्र. प्रेस कॉ.-सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालन करने हारा है सब संसार का।। १।। क्षमा करने वाला दयालु है।
म. १/सि. १/सूरतुल्फातिहा/ आयत १/२

स.प्र.द्वि.सं.- सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है, जो पालन करने हारा है सब संसार का।। क्षमा करने वाला दयालु है। म. १ सि. १ सूरतुल्फातिहा। आ. १/२।।

३. हि. कु.- मालिक दिन न्याय का तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं दिखा हमको सीधा रास्ता।।५।।

स.प्र.मूल ह.- मालिक दिन न्याय का। तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं। दिखा हमको सीधा रास्ता। मं. १ सि. १ सू. १ आ. ३/ ४/ ५

स.प्र. प्रेस कॉ..- मूल हस्त लेख जैसा ही पाठ है।

स.प्र.द्वि.सं.- मालिक दिन न्याय का तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं।। दिखा हमको सीधा रास्ता। मं. १ सि. १ सू. १ आ. ३/४/५

४- **हि. कु.**- उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तुमने निआ़मत अर्थात् ऐश्वर्य दोनों लोक का वा अत्यन्त दया की और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा।

स.प्र. मूल ह.- उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने नियामत अर्थात् ऐश्वर्य दोनों लोक का वा अत्यन्त दया की। और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहूँ का मार्ग हमको दिखा। मं. १/सि. १/सू. १ आ. ६-७।।

स.प्र. प्रेस कॉ.- उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने नियामत अर्थात् ऐश्वर्य दोनों लोक का वा अत्यन्त दया की और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहूं का मार्ग हमको दिखा। म. सि. सू. १ आ. ६-७

स.प्र.द्वि.सं.- उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने निआ़मत की और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की।। और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा।

मं. १ सि. १/सू. १ आ. ६-७

६. हि. कु.- उनके दिलों में रोग है अल्लाह ने उनको रोग बढ़ा दिया। म. १ सि. १ सू. २ आ. ९ (सही सं. १०)

स.प्र. मूल ह.- उनके दिलों में रोग है अल्लाह ने उनको रोग बढ़ा दिया।

म. १ सि. १ सू. २ आ. ९ (सही १०)

स.प्र. प्रेस कॉ.- उनके दिलों में रोग है अल्लाह ने उनको रोग बढ़ा दिया।

म. १ सि. १ सू. २ आ. ९ (सही १०)

स.प्र.द्वि.सं.- उनके दिलों में रोग है अल्लाह ने उनको रोग बढ़ा दिया। म. १ सि. १ सू. २ आ. ९ (सही १०)

७. हि. कु.- जिसने तुम्हारे वास्ते पृथ्वी का बिछौना और आसमान की छत को बनाया।

मं. १ सि. १ सू. २ आ. २१ (सही सं. २२)

स.प्र. मूल ह.- जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना बनाया और आसमान की छत को बनाया।

मं. १ सि. १ सू. २ आ. २१ (सही सं. २२)

स.प्र. प्रेस कॉ.- जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया।

मं. १ सि. १ सू. २ आ. २१ (सही सं. २२)

स.प्र.द्वि.सं.- जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया।

म. १ सि. २ सू. २ आ. २१ (सही सं. २२)

८. हि. कु.- जो तुम न करो और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका ईंधन मनुष्य है और काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैय्यार किये गये हैं।

मं. १/ सि. १/ सू.२ आ. २३ (सही सं. २४)

स.प्र. मूल ह.- जो तुम और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका इंधन मनुष्य है और काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।

मं. १/सि. १/ सू. २। आ. २२/२३ (सही सं. २४)

स.प्र. प्रेस कॉ.- जो तुम और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका ईंधन मनुष्य है और काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।।

मं. १/ सि. १/ सू. २/ आ. २३ (सही सं. २४)

स.प्र.द्वि.सं.- और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है और काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।

मं. १/ सि. १/ सू. २। आ. २३ (सही सं. २४)

११. हि. कु.- जब हमने फरिश्तों से कहा कि बाबा आदम को दंडवत् करो, सबने दंडवत् प्रणाम किया, परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफिर था। मं. १/सि. १/सू.२/ आ. ३२ (सही सं. ३४)

स.प्र. मूल ह.- जब हमने फरिश्तों से कहा कि बाबा आदम को दंडवत् करो परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वह भी एक काफिर था।

मं. १/ सि. १/ सू. २/ आ. ३२ (सही सं. ३४)

स.प्र. प्रेस कॉ.- मूल जैसा ही पाठ है।

स.प्र.द्वि.सं.- जब हमने फरिश्तों को कहा कि बाबा आदम को दंडवत् करो देखा सभों ने दंडवत् किया परन्तु शयतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफिर था। म. १/सि. १/सू. २ आ. ३२ (सही सं. ३४)

१५. हि. कु.- इसी तरह मुर्दों को अल्लाह जिलाता

है और तुमको अपनी निशानयाँ दिखाता है कि तुम समझो।

मं. १/ सि. १ /सू. २ /आ. ६७ (सही सं. ७३)

स.प्र. मूल ह.- इस तरह मुर्दों को अल्लाह जिलाता है और तुमको अपनी निसानियां दिखाता है कि तुम समझो।

म. १ /सि. १/ सू. २ /आ. ५० (सही सं. ७३)

स.प्र. प्रेस कॉ.- इस तरह खुदा मुर्दों को जिलाता है और तुमको अपनी निसानियां दिखलाता है कि तुम समझो।

म.१/सि.१/सू. २/आ. ५ (सही सं. ७३)

स.प्र.द्वि.सं.- इस तरह खुदा मुर्दों को जिलाता है और तुमको।। अपनी निशानियां दिखलाता है कि तुम समझो।।

मं. १ /सि. १/ सू.२ /आ. ६७ (सही सं. ७३)

१६. हि. कु.- वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुंठ में वास करेंगे।

मं. १ /सि. १/ सू. २ /आ. ७५ (सही सं. ८२)

स.प्र. मूल ह.- वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुंठ में वास करेंगे।

मं. १ /सि. १ /सू. २ /आ. ६४/६५ (सही सं. ८२)

स.प्र. प्रेस कॉ.- वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुंठ में वास करेंगे।

मं. १/सि. १ /सू. २ /आ. ६४-६५ (सही सं. ८२)

स.प्र.द्वि.सं.- वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुंठ में वास करने वाले हैं।

मं. १। सि. १। सू. २ आ. ७५ (सही सं. ८२)

उपर्युक्त तालिका में दिखलाई गई कुरान की आयत /आयतांश से स्पष्ट है कि समीक्षांश १.३.६ की हिन्दी कुरान और सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत कुरान की ये आयतें बिल्कुल समान हैं, समीक्षांश २,४,७,८,११,१५ और १६ की आयतों में बहुत ही अल्प परिवर्तन है। इनमें अधिकांश भाग हिन्दी कुरान का ही है।

इसके अतिरिक्त समीक्षांश ८ में जो इस आयत का अशुद्ध अनुवाद हुआ है, उसका कारण भी यह हिन्दी कुरान है। इस संबन्ध में श्री पं. रामचन्द्र देहलवी जी के निम्नलिखित लेख का कृपया अवलोकन करें-

खण्ड सं. ८ की अन्तिम आयत के अनुवाद में अरबी भाषा की दृष्टि से एक भूल हो गई है। सत्यार्थप्रकाश का भाषानुवाद इस प्रकार है-

'तो उस आग से डरो कि जिसका इंधन मनुष्य है और काफिरों के वास्ते पत्थर तैय्यार किये गये हैं।'

शाह रफ़ीउद्दीन का उर्दू अनुवाद यह है-

'पस डरो उस आग से जो इंधन उसका आदमी हैं और पत्थर तैयार की गई है वास्ते काफिरों के।'

कुर्आन की आयत के अनुसार शाह साहब के तर्जुमें का यह मतलब है-

'पस उस आग से डरो जिसका इंधन मनुष्य और पत्थर हैं और जो (आग) काफिरों के लिये तैयार की गई है।'

वास्तव में इस भूल का कारण शाह साहब के अनुवाद का प्रकार ही है। अकस्मात् शाह साहब ने 'हैं' क्रिया को 'आदमी' के पीछे लिख दिया और पत्थर के पीछे विराम (comma)नहीं दिया। आर्यभाषा में अनुवाद करने वाले ने सामान्य बुद्धि का प्रयोग करके 'हैं' के पीछे विराम समझ लिया, पत्थर को आगे आने वाले टुकड़े से जोड़ दिया, और 'गई' को 'गए' गढ़ लिया। इस प्रकार अनर्थक से वाक्य को सार्थक बना दिया।

यहाँ कुर्आन के कर्त्ता का मतलब 'मनुष्य' से मूर्त्तिपूजक और पत्थर से मूर्त्तियाँ है। मूर्त्तिपूजक चेतन होने से आग में डाले जा सकते हैं, परन्तु पत्थर की मूर्त्तियाँ जड़ होने से आग का ईधन नहीं हो सकतीं न उनको कोई दु:ख हो सकता है। इसलिये आर्यभाषानुवादक ने संभवार्थ के आधार पर विराम की कल्पना की-'हैं' के पश्चात् विराम लगाया और पत्थर को आगे वाले वाक्य से जोड़ दिया। और बेमुहावरा उर्दू तर्जुमे को बामुहावरा आर्य भाषा में लिख दिया, जैसा कि १४ वें समुल्लास में इस समय छपा हुआ है और जो ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। इसमें श्री स्वामी जी की भूल तो क्या, अनुवादक की भूल भी नहीं कह सकते, जिसने अरबी न जानने की अवस्था में, बिना किसी अशुद्ध भावना के केवल बुद्धि के आधार पर शाह साहब के अनुवाद को सार्थक बनाकर आर्यभाषा का रूप दिया।

इस विषय में निम्नलिखित प्रमाण भी दृष्टव्य है, सत्यार्थप्रकाश समीक्षांश ४ में निम्नलिखित आयतें उल्लिखित हैं-

उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने निआ़मत की और उनका मार्ग मत दिखा जिनके ऊपर तूने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की।। और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा। म. १/ सि. १/ सू. १/ आ. ६,७।।

हिन्दी कुरान के प्रथम पृष्ठ के ऊपर इन आयतों के संबन्ध में टिप्पणी 'क' निम्न प्रकार दी हुई है-

(क) यह सूरत अल्लाह साहब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें।।

सत्यार्थप्रकाश में इस आयत की समीक्षा में इस प्रकार लिखा गया है-

और इस सूरत की टिप्पन पर-''यह सूरः अल्लाह साहब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें।''

जो यह बात है तो 'अलिफ बे' आदि अक्षर भी खुदा ही ने पढ़ाये होंगे। जो कहो कि नहीं तो बिना अक्षर ज्ञान के इस सूरः को कैसे पढ़ सके? क्या कण्ठ से ही बुलाये और बोलते गये? जो ऐसा है, तो सब कुरान ही कण्ठ से पढ़ाया होगा।

इस समीक्षा से स्पष्ट है कि हिन्दी कुरान से उक्त टिप्पन महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत की। अतः सिद्ध होता है सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १४ में महर्षि दयानन्द द्वारा उक्त हिन्दी कुरान जिसका नाम 'कलामुल्लाह वा कुरान' है का ही उपयोग किया गया है।

इस विषय में मैं निम्नलिखित एक आयतांश और उसकी महर्षि द्वारा की गई समीक्षा और प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह आयत उपर्युक्त हिन्दी कुरान सत्यार्थप्रकाश द्वितीय सं. की मूल हस्तलिखित प्रति तथा प्रेस कॉपी में विद्यमान है, किन्तु इसकी आयत संख्या मूल हस्तलेख तथा प्रेस कॉपी में अंकित न होने के कारण इसे सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण में नहीं रखा गया। सत्यार्थप्रकाश के ३९ वें संस्करण तथा उसके बाद के संस्करणों में भी इसकी आयत संख्या का उल्लेख नहीं, किन्तु यह आयतांश और उसकी समीक्षा है। हिन्दी कुरान के अनुसार इसकी आयत सं. १३७ है, इसकी सही आयत सं. १५४ है। आयतांश और समीक्षा नीचे प्रस्तुत है।

५५.'यह लड़ाई इस वास्ते कि अल्लाह तुम्हारी परीक्षा लेवे' म. १। सि. ४। सू. ३। आ. १३७ (सही सं. १५४)

जो लड़ाई के बिना परीक्षा नहीं कर सकता तो वह सर्वज्ञ नहीं इससे वह ईश्वर क्यों कर हो सके।। ५५।।

सत्यार्थप्रकाश सं. २ में आयतों की सं. में भूल भी उपर्युक्त कुरान के कारण ही हुई है।

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अतः ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

ऐतिहासिक कलम से....

६ सितम्बर जन्मदिवस पर विशेष...

प्रभु की दयालुता

पं. गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय

दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं, भगवान को मानने वाले और नकारने वाले। जो नहीं मानते, उन्हें उसके विशेषताओं से मतलब ही क्या, पर जो मानते हैं, उन्हीं के हाथ में ये बागडोर है कि भगवान को किस ढंग से प्रचारित करें। इन्हीं में से कुछ का कहना है कि वह हर का ठीक=उचित ही करता है और कुछ कहते हैं कि वह कुछ भी करता है, उसकी मरजी। यह कुछ भी वाला मामला भगवान् को आवारा साबित करता है। अब भगवान् आवारा तो है नहीं। ऐसी ही एक समस्या पर पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने महर्षि दयानन्द के विचारों का विशेषण कर 'ईश्वर की दया और न्याय' को एक ही सिद्ध किया है। यह विवेचन ईश्वर की श्रेष्ठता को ही सिद्ध करता है। उनके जन्मदिवस पर पाठकों को समर्पित करने के लिये यह विवेचन एक अच्छा उपहार लगा, सो दे रहे हैं- सम्पादक

परमेश्वर की दयालुता के विषय में सदैव कुछ-कुछ शङ्काएँ रही हैं। कुछ लोग ईश्वर को न्यायकारी तो मानते हैं, परन्तु दयालु नहीं। कुछ न न्यायकारी मानते हैं न दयालु। कुछ न्यायकारी भी मानते हैं और दयालु भी, परन्तु उनका मत है कि ईश्वर न्याय या दया करना चाहता तो है, परन्तु अपनी इच्छा को पूरा करने में अशक्त है।

कम से कम एक बात तो लगभग सर्वसम्मत है कि ईश्वर अन्याय और अदयालुता को संसार से मिटाने में सफल नहीं हुआ। वह यदि दयालुता करता भी है और कर भी सकता है तो भी दूसरों को अदयालुता करने देता है। इसी प्रकार चाहे स्वयं न्याय करता भी है और कर भी सकता हो, फिर भी अन्याय रोकने में सफल नहीं हो सका।

यह हैं प्राय: उनके विचार जो सृष्टि के कार्यक्रम के समालोचक हैं। अनीश्वरवादिता का बीज यहीं से आरम्भ होता है।

जो पूर्ण ईश्वरवादी या यों कहना चाहिये कि पूरे भक्त हैं, वह न सृष्टिकर्त्ता के समालोचक हैं न सृष्टिक्रम के, वह आँखें बन्द करके मान लेते हैं कि जो कुछ करता है ईश्वर ही करता है और वह सदा अच्छा ही करता है, बुरा नहीं करता। वह ईश्वर को पूर्णरूपेण दयालु मानते हैं, सुख देता है तो भी दया करके, दु:ख देता है तब भी दया करके। उनकी दृष्टि में ईश्वर दयालु है, न्यायकारी नहीं, न्याय करता तो हम पापियों को कुछ भी सुख न होता। हमारे पाप बहुत हैं। उनकी तुलना में दु:ख बहुत कम है। बाइबिल कहती है (judge not that thou mayst not be judagged.) (किसी के कामों को मत तोलो कि कहीं कोई तुम्हारे कर्मों को न तोलने लगे।)

यह आलोचना-विरोध भी अन्त में नास्तिकता की ही पुष्टि करता है। क्योंकि मनुष्य वास्तविक घटनाओं की कब तक उपेक्षा कर सकता है? कभी-कभी तो आँखें खोलनी ही पड़ती हैं। मुसलमानों की एक नित्योक्ति है-

वल्लाह आलमां। (अर्थात् ईश्वर ही ठीक जानता है) परन्तु फिर भी मुसलमानों में दार्शनिक भी हुये जिन्होंने अपने स्वभाव, अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार विचार किया और तर्क-वितर्क करके कुछ सिद्धान्त निश्चित किये।

ईश्वर दयालु है या नहीं। संसार में दयालुता है या नहीं। इस प्रश्न को भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखते हैं, परन्तु निर्दयी से निर्दयी और अन्यायी से अन्यायी भी दया और न्याय को अच्छा और निर्दयता और अन्याय को बुरा समझता है। वह चाहता है कि दूसरे उसके साथ न्याय भी करें और दया भी करें। यदि दया करना उसके लिये न्याय से अधिक इष्ट हो तो वह चाहता है कि दूसरे उसके साथ न्याय की अपेक्षा दया करें। यदि एक विद्यार्थी न्याय करने से फेल होता है और दया से पास तो उसकी इच्छा होती है कि परीक्षक न्यायी होने की अपेक्षा दयालु हो तो अच्छा। यदि एक न्यायाधीश न्याय करके दण्ड देता है और दया करके क्षमा कर देता है तो अपराधी की इच्छा यह होती है कि न्यायाधीश न्यायाधीश होने के स्थान में दयाधीश या क्षमाधीश होता तो अच्छा होता।

यह प्रवृत्ति विश्वव्यापी क्यों है और इसका विश्व पर क्या प्रभाव पड़ता है इसको बड़ी गम्भीरता से सोचना चाहिये।

यह प्रवृत्ति विश्वव्यापी है इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। क्यों है, यह प्रश्न कठिन है। कौन चाहता है कि लोग

उस पर निर्दयता करें। वह न्याय से तभी डरता है जब न्याय के साथ निर्दयता होती हो। इसलिये दया चाहने की इच्छा विश्वव्यापी है। निर्दयता के लिये घृणा भी चाहे उतनी ही विश्वव्यापी न हो, तब भी इसका आधिक्य है। अपवाद कम मिलेंगे।

इससे एक बहुत बड़े मौलिक सिद्धान्त का पता चलता है। वह यह है कि समस्त सृष्टिक्रम के मूल में दया है। जैसे वृक्षों के मूल में एक ऊर्जा या रस होता है। वह दृष्टिगोचर न होते हुये भी हर डाली और हर पत्ते में ओत-प्रोत होता है। ऐसे ही यह दया का भाव है जो समस्त प्राणियों के आन्तरिक जीवन को अनुप्राणित करता रहता है। यही कारण है कि यदि हम प्राणियों के परस्पर व्यवहार के अंक इकट्ठे कर सकें या करें तो हमको ज्ञात होगा कि सृष्टि में दया की अपेक्षा निर्दयता कम है और जब निर्दयता एक सीमा से बढ़ती है तो समस्त सृष्टि काँप जाती है। विरोध की आवाज तेज हो जाती है। त्राहि माम्! त्राहि माम्! का शोर होने लगता है। हर मनुष्य कहता है 'त्राहि माम्'! किससे कहते हैं 'त्राहि'? इस लोटलकार युक्त क्रिया का सम्बोधन किसके प्रति है, यह पता नहीं। हम दया को माँगते हैं। जानते नहीं कि किससे? क्या इतनी सर्व-व्यापी इच्छायें कोई मूल नहीं रखतीं? क्या यह सब भ्रम ही भ्रम है? भ्रम इतना विश्वव्यापी नहीं होता।

दया का दूसरा नाम ही न्याय है। क्योंकि जैसे हम चाहते हैं कि दूसरे हम पर दया करें, उसी प्रकार यदि हम यह भी चाहने लगें कि हम उन पर दया करें तो यही न्याय हो जाता है। न्याय क्या है? दया का सन्तुलन! 'तुम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो कि वह तुम्हारे साथ करें' इसी को तो न्याय कहते हैं। इसलिए न्याय दया का विरोधी नहीं। बिना न्याय के दया अधूरी है, एकाङ्गी है, लंगड़ी है, एकपक्षी है, उभयपक्षी नहीं। जो परीक्षक मोहन को दया करके अधिक अंक देता है वह सोहन के साथ अदया करता है, क्योंकि मोहन ने बिना योग्यता के उस स्थान को पा लिया जिससे सोहन वंचित कर दिया गया। जो प्रयोग सोहन के साथ निर्दयता का कारण हुआ वह मोहन के लिये भी हो सकता है और यदि ऐसा होने लगा तो पानी मिला हुआ दूध भी न रहेगा, केवल पानी ही पानी होगा जिसमें एक बूंद भी दूध न होगा। ऐसी दया को दया नहीं, पक्षपात, धींगाधींगी, जिसकी लाठी उसकी भैंस, अन्धेर नगरी आदि आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। जब दया न्याय से थोड़ी ही विचलित होती है तो पता नहीं चलता, जैसे एक मन दूध में एक पाव पानी, परन्तु जब ऐसे दयालु पुरुषों की भरमार होने लगती है तो इसको कोई दया नहीं कहता। अन्याय दया को नष्ट कर देता है। एक ही चीज है उसको हम दो दृष्टिकोणों से देखते हैं। ज्यों-ज्यों दया और न्याय में विरोध होता जाता है, त्यों-त्यों दया और न्याय दोनों का ह्रास होने लगता है। न दया रहती है न न्याय! वस्तुतः जिस क्षण दया से न्याय हटने लगा और न्याय से दया हटने लगी, उसी क्षण दया और न्याय के ह्रास का आरम्भ हो गया। पहले सूक्ष्म था, शनैः शनैः स्थूल हो गया। जब विरोध बहुत बढ़ गया तब मालूम हुआ कि दोनों नहीं रहे, न दया न न्याय! वस्तुतः दया ने न्याय को दबाया नहीं, न न्याय ने दया को। जब दया न्याय को दबाने चली तो उसने स्वयं अपने को दबा लिया। जब न्याय दया को दबाने चला तो उसका स्वयं ह्रास होने लगा। कुत्ता जब हड्डी के मुँह में छिद जाने से अपना ही रक्त चूसता है तो वह नहीं समझता कि मैं अपना रक्त चूस रहा हूँ। इसलिये दया से आहत होकर जो न्याय से विचलित होता है, वह वस्तुतः निर्दयता आरम्भ कर देता है। इसलिये दया और न्याय मूल में एक है। वह उस समय और उसी को भिन्न प्रतीत होते हैं, जिसमें जिस समय स्वार्थ आ जाता है। स्वार्थ, जीव की सबसे बड़ी निर्बलता है। मनुष्य में जितना स्वार्थ कम होता जाता है उतना ही वह न्याय और दया की समानार्थकता को अनुभव करने लग जाता है। इतनी बात समझ लेने के पश्चात् जो कई पक्ष हमने इस लेख के आरम्भ में प्रदर्शित किये थे, उनकी कठिनाई कम होने लगती है। हमारा दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है। और चाहे हम सृष्टिकर्ता को मानें या न मानें, सृष्टि हमको इतनी अनियमित और उच्छृङ्खल दृष्ट नहीं आती।

अब एक और बात पर विचार कीजिये। कल्पना करो कि आप अकेले एक ऐसे टापू में रहते हैं जहाँ कोई अन्य प्राणी है ही नहीं, और आपके जीवन के भोजन आदि जितने साधन होने चाहियें वह सब प्राप्त हैं। तो आप किस पर दया करेंगे और किसके प्रति न्याय? ना दया का प्रसंग होगा न न्याय का। परन्तु यदि कुछ काल के पश्चात् एक और मनुष्य आ जाय या कम से कम एक कुत्ता ही आपके साथ रहने लगे तो दया और न्याय दोनों भावों का विषय उपस्थित होने लगता है

क्योंकि भोग्य पदार्थों में किसी दूसरे का साझा हो जाता है। उससे आपके व्यवहार आरम्भ हो जाते हैं और प्रत्येक कर्म जो आप उसके प्रति करते हैं या वह आपके प्रति, उसमें दया-निर्दयता, न्याय या अन्याय का कुछ न कुछ पुष्ट रहता है। यदि वह और आप आधे-आधे पर सन्तुष्ट हो जाते हैं तो इसको न्याय कहते हैं। अरबी भाषा में इसको 'इन्साफ़' कहते हैं। 'इन्साफ़' का अर्थ है निस्फ़ निस्फ़ करना। निस्फ का अर्थ है-आधा। यह अर्द्धीकरण ही न्याय है, परन्तु यदि आपने या उसने आधे से अधिक की इच्छा की तो इसको न्याय न कह कर अन्याय कहेंगे और यह होगी निर्दयता। जब एक ही भोग्य पदार्थ में बहुत से साझीदार होते हैं जैसे एक परिवार, एक ग्राम, एक नगर, एक देश या संसार भर में, तो हर एक अपने उचित भाग से अधिक लेने का यत्न करता है। यही अन्याय और निर्दयता का मूल है। जब दो साझीदार थे तब कोई निर्णायक न था। निर्णायक का अर्थ है न्याय करने वाला। निर्णायक **णीञ् प्रापणे** धातु से सिद्ध होता है और न्याय शब्द भी वस्तुतः इसी धातु से सिद्ध होना चाहिये, पाणिनि महाराज के सीधे नियमों द्वारा अथवा निपातन से, भाव वही है यदि साझीदार बहुत हुये तो न्यायाधीश, न्यायालय, उच्च न्यायालय आदि का प्रश्न उठता है। अर्थात् जिन दो व्यक्तियों में झगड़ा है उसका निर्णय कोई तीसरा व्यक्ति करे, जो उन दोनों में से किसी के भोग में साझीदार नहीं है। लौकिक न्यायालयों में यही होता है। यत्न किया जाता है कि ऐसे निर्णायक या न्यायाधीश हों, जिनका प्रतिद्वंद्वियों में से किसी के लाभ से सम्बन्ध न हो। न्यायालयों का न होना, न केवल न्याय की हत्या है अपितु दया की भी। दया तो सभी को इष्ट है। सभी चाहते हैं कि किसी को उनके प्रति अदया करनेकी आज्ञा न हो। यही प्रवृत्ति है जो जंगली जातियों में भी एक राजा चुनने के लिये प्रेरित करती है और सभ्य जातियों में न्यायालयों या अन्तर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों के निर्वाचन को सम्भव बनाती है। यदि मनुष्य जाति में यह भाव विश्वव्यापी और अतएव स्वाभाविक न हो तो कोई किसी न्यायालय को स्वीकार न करे। और वह भयानक स्थिति हो जाय कि कोई उसका सहन न कर सके। आप यदि भिन्न-भिन्न युगों की भिन्न-भिन्न जातियों के न्यायालयों के रूप और विधान आदि के इतिहास पर दृष्टि डालें तो आपको शीघ्र ही पता चल जायेगा कि न्याय और दया दोनों का एकीकरण ही समस्त धर्मशास्त्र का मूल है। "**स्वस्य च प्रियमात्मनः**" यह न्याय का भी ध्येय है और दया का भी। श्रुति, स्मृति, सदाचार अथवा धर्म के अन्य प्रकार तो इस मूल ध्येय को सींचने के साधन मात्र हैं। यदि न्याय को साधारण मनुष्य स्थापित कर सकते तो 'सदाचारः' (**सताम्, विशेषपुरुषाणाम् आचारः**) की आवश्यकता न पड़ती। सत् पुरुषों में भी उत्कृष्ट माने गये स्मृतिकार। क्यों? इसलिये कि वर्तमान जीवित सत्पुरुषों में सम्भव है कि किसी दल के प्रति कुछ मोह हो और न्याय में कुछ मिलावट हो जाय। परन्तु भूतकाल के महापुरुष जो स्मृतिकार हुये हैं आजकल के किसी प्रतिद्वन्द्वी से सम्बन्ध नहीं रखते। वो उन भोगों में साझीदार नहीं हैं जिनके ऊपर झगड़ा है, अतः वह अधिक उत्कृष्ट न्याय-निर्णायक हैं, परन्तु सबसे अधिक उपयोगी माना श्रुति को, क्योंकि परमात्मा तो संसार के किसी भोग्य पदार्थ का भोक्ता नहीं, "**अनश्नन् अन्योऽभिचाकशीति**" (ऋग्वेद)। ऐसी सत्ता यदि न्याय करेगी तो वह सच्चा न्याय होगा। सबके भोग बराबर-बराबर दिये जायेंगे। बन्दरबाँट न होगा। यदि बिल्लियाँ किसी बन्दर के पास न जाकर किसी मशीन के पास जातीं तो दोनों को बराबर भाग मिल जाता। बन्दर ने अन्याय क्यों किया? अपने स्वार्थ के लिये। अतः वह दोनों बिल्लियों के प्रति निर्दयता हुई। यदि निर्दयता न होती तो अन्याय की शिकायत भी न होती। जो निर्दयता करता है उसी को अन्यायी कहते हैं, जहाँ निर्दयता की शिकायत नहीं वहाँ अन्याय की भी नहीं। यदि कोई मनुष्य आपके घर से कोई ऐसी चीज उठा ले जाय जैसे कूड़ा, जिससे आपको निर्दयता की अनुभूति न हो तो आप उसको अन्यायी भी न कहेंगे, न न्याय कराने के लिये किसी न्यायाधीश का आश्रय लेंगे। इससे हम इतनी बातें सिद्ध कर सकते हैं-

(१) न्याय और दया समानार्थक हैं अर्थात् इनका 'अर्थ' या 'प्रयोजन' एक ही है। 'प्रयोजन' का मौलिक अर्थ लीजिये। योजना करने वाला, साधक, प्रेरक। किसी कर्म में प्रवृत्ति कराने वाला। अर्थात् मनुष्य में जिन कर्मों की प्रवृत्ति न्याय उत्पन्न करती है उन्हीं की दया। अतः जहाँ स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में दया और न्याय को समानार्थक बताया, वहाँ कुछ अनर्थ नहीं किया।

(२) दूसरी बात यह है कि न्याय और दया का प्रश्न

तब उत्पन्न होता है, जब भोग्य पदार्थों के भोगने वाले बहुत होते हैं, सृष्टि के सभी पदार्थ भोग्य हैं। घास, फूस, आग, पानी, सूर्य, वायु इत्यादि। इनके भोगने वाले हैं अनन्त मनुष्य तथा उनके साथी अनन्त प्राणी। ये सब स्वार्थवश दूसरे के भोजन में से अपने भाग से कुछ अधिक लेना चाहते हैं, यही अन्याय है और यही दूसरों के प्रति निर्दयता। इसी को आप कुकर्म, अशुभ कर्म या पाप कह सकते हैं। इनको रोकने वाला न्यायाधीश है, लौकिक हो अथवा लोकोत्तर। वह आपको निर्दयता करने से रोकता है। इसको आप अनुचित रूप में निर्दयता कह सकते हैं। यह निर्दयता नहीं, दया है।

(३) ऐसा सर्वोत्कृष्ट निर्णायक या न्यायाधीश परमेश्वर ही हो सकता है, क्योंकि उसका सृष्टि के भोगों में कोई भाग नहीं है। मनुष्य का कुछ न कुछ दूरस्थ स्वार्थ हो सकता है, ईश्वर का नहीं। अत: वह सच्चा दयालु भी है तथा सच्चा न्यायकारी भी।

जो लोग ईश्वर की सत्ता पर विश्वास नहीं करते वो भी दया और न्याय के भावों से सर्वथा रिक्त नहीं हैं और न उनको निर्दयता और अन्याय पसन्द है। वो भी यदि चेतन, सर्वज्ञ ईश्वर की निष्पक्षता पर विश्वास नहीं रखते तो भी वो अचेतन जड़ जगत् के ऐसे विश्वव्यापी विधान पर विश्वास रखते हैं जो प्रतिद्वंद्वियों में से किसी दल या व्यक्ति का पक्षपात नहीं करता। उसका न्याय सब न्यायाधीशों से अधिक उत्कृष्ट और पक्षपातशून्य है। अत: उसकी दयालुता भी स्पष्ट ही है।

पाप और दु:ख का एक-दूसरे के साथ समवाय सम्बन्ध है, यदि आप किसी बच्चे को पेट के दर्द से चिल्लाते देखेंगे तो झट से पूछने लगेंगे कि क्या गड़बड़ खा लिया। यदि आप किसी को पिटते और चिल्लाते देखेंगे तो झट पूछोगे कि भाई इसने क्या बिगाड़ा है? यदि किसी को हथकड़ी पहने बाजार से गुजरते देखेंगे तो झट पूछेंगे कि क्या इसने चोरी की है? इसका यह अर्थ है कि किसी को कष्ट में देखकर आपका प्रथम विचार यह होता है कि इसने कोई अनिष्ट कर्म किया है। साधारण भूल हो, वैधानिक अपराध हो या पाप हो। ये सब सजातीय शब्द हैं, जो पाप के समानार्थक हैं और उनका दु:ख से निमित्त-नैमित्तिक या कारण-कार्य का सम्बन्ध है। कभी-कभी आप किसी दु:ख के कारण को जान नहीं पाते, परन्तु तलाश अवश्य करते हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक त्रिविध तापों के मूल कारण को जानने की विद्वानों की सदैव उत्कण्ठा रही है। इतिहासज्ञों ने पता लगाने का यत्न किया है कि किसी देश या जाति के उत्थान- पतन के कौन-कौन कारण थे अर्थात् उन लोगों ने क्या पाप या पुण्य किये थे। वैद्यों की यह उत्कण्ठा रही है कि पता चला सकें कि किन शारीरिक पापों के कारण रोग उत्पन्न होते हैं। आचारशास्त्र के विज्ञ हमारे दु:खों का कारण हमारी भूलों में देखने का यत्न करते हैं। इनमें ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी दोनों ही शामिल हैं। अनीश्वरवादियों ने ईश्वर या उसके पर्य्याय शब्दों को त्याग दिया है। वह पाप और पुण्य शब्दों का प्रयोग करने में भी घबराते हैं कि कहीं ईश्वरवादी आकर उनके गले न लग जायें, परन्तु उपदेश तो वह भी देते हैं। उन्होंने भी शुभ-अशुभ कर्म को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को छोड़ा नहीं है। अनीश्वरवादी देशों में भी उपदेश, उपदेष्टा और उपदेश सुनने वालों का अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ। इससे सिद्ध है कि पाप और दु:ख का परस्पर सम्बन्ध है। जहाँ पाप होगा वहाँ दु:ख होगा।

परन्तु जैसे स्वार्थ निर्दयता और अन्याय को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार वह पाप और दु:ख या पुण्य और सुख के यथार्थ सम्बन्ध के ठीक-ठीक परिज्ञान में भी बाधक होता है कि मनुष्य अपने को सबसे कम पापी और सबसे अधिक दु:खी समझता है। अर्थात् वह समझता है कि समस्त संसार का हर एक व्यक्ति उसकी अपेक्षा अधिक अन्यायी और अदयालु है। इसलिये जगत् के दु:खों में सबसे बड़ा भाग उसी को मिला है। परन्तु यह वास्तविकता तो नहीं है। यही कारण है कि बहुत से दु:खों के ठीक-ठीक कारणों को हम जान नहीं सकते या जानना नहीं चाहते। दूसरों की बुराई हमको क्यों अच्छी लगती है? हम अपने दु:खों को दूसरों के पापों से क्यों सम्बद्ध करना चाहते हैं? क्यों हम उन दु:खों में अपने पापों को देखने का यत्न नहीं करते? यही हमारी सबसे बड़ी निर्बलता है। आत्म-बल की सबसे पहली पहचान यह है कि हम अपने कर्मों और अपने भोगों का सम्बन्ध जान सकें। यदि ऐसा हो जाय तो विश्व की बड़ी से बड़ी समस्यायें हल हो जावें।

बहुत से दु:ख हमको अकारण दिखाई पड़ते हैं, और उनकी भयानकता हमको इसलिये और भी भयभीत कर देती

है कि उनको हम एकसाथ देखते हैं। किसी बड़े नगर के हस्पताल में जाइये। हस्पताल में आने से पूर्व रोगी अपने-अपने घरों में बँटे हुये थे। थे अवश्य, परन्तु आपका ध्यान न था। जब वो इकट्ठे होकर एक स्थान पर आये तो दृश्य अधिक वीभत्स हो गया। लोग रोज मरते हैं, परन्तु श्मशान में आठ-दस लाशें एक साथ जलती हुई देखकर बड़ा बुरा लगता है। एक रेल लड़ जाने में एक साथ सौ-दोसौ मृत्युओं को देखकर बड़ा रोष उत्पन्न होता है। यद्यपि हिसाब लगाने से मृत्यु के अनुपात में कोई बहुत बड़ी वृद्धि नहीं होती। मैं बीमा कम्पनी के एक सुविज्ञ कर्मचारी से बातचीत कर रहा था। कम्पनियों को अचानक मृत्यु, आत्महत्या, लड़ाई, भूकम्प आदि में मरने वालों को भी एक बड़ी धनराशि देनी पड़ती है। फिर कम्पनियों को इससे क्या लाभ होता है? उन्होंने बताया कि क्वेटा आदि के भूकम्पों या बड़े से बड़े युद्ध या हिरोशिमा की बमबारी से जो मृत्युएँ हुईं, उनका प्रतिशत अनुपात संसार भर की अङ्क-गणना में कोई असाधारणता उत्पन्न नहीं करता और कम्पनियाँ जितना भार लेने के लिये पहले से तैयार रहती हैं, उससे अधिक भार इन दुर्घटनाओं के कारण उठाना नहीं पड़ता। यह एक बड़ी सच्चाई है जो हमारे प्रकृत प्रश्न से विशेष सम्बन्ध रखती है। यदि हमारे समक्ष विश्वभर के प्राणियों के कर्मों और भोगों का एक लम्बे युग का चित्र होता तो हम समझ पाते कि हमारे पापों और हमारे दु:खों में क्या अनुपात है और जगत् की शक्तियाँ अन्याय और अदयालुता को रोकने में कितनी सफल हुई हैं। मनुष्य अन्याय या निर्दयता करने का विचार कर सकता है, परन्तु क्या सदा सफल भी होता है? क्या बहुधा उसके आन्तरिक विचार ही उसको अनिष्ट करने से रोक देते हैं? कभी विश्व की अन्य शक्तियाँ उसके मार्ग में रुकावट उत्पन्न करती हैं और कभी जिसको मनुष्य अपनी निर्दयता की सफलता समझता है वह भोक्ता के प्रति विपरीत फल की देने वाली होती है। जिन आकस्मिक दुर्घटनाओं में घराने के घराने एक क्षण में नष्ट हो गये उनके नष्ट होने से किसको दु:ख हुआ? आज कौन उनके लिये रोता है? क्योंकि कोई रोने को बचा ही नहीं। मरनेवालों को तो मृत्यु के पीछे पता भी न रहा होगा कि हमको क्या दु:ख हुआ। यह है सृष्टि-नियम का अन्तिम हस्तक्षेप। स्वतन्त्र प्राणियों के कर्म-स्वातन्त्र्य में सृष्टिकर्त्ता हस्तक्षेप नहीं करता, क्योंकि ऐसा करने से तो कर्तृत्व नष्ट हो जाय। '**स्वतन्त्र: कर्त्ता**'। स्वतन्त्रता कर्तृत्व का लक्षण है। स्वतन्त्र जीव का कर्म ही न्याय, अन्याय, दया, निर्दयता की कोटि में आता है। अत: सृष्टि-नियम या ईश्वर को हस्तक्षेप करने का प्रसङ्ग ही नहीं आता। परन्तु भोगों में तो ईश्वर सदा ही हस्तक्षेप करता रहता है। कहीं-कहीं थोड़ा, परन्तु अन्ततोगत्वा अधिक। इसीलिये कहा कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फल पाने में परतन्त्र है। ईश्वर या सृष्टि-क्रम की एक व्यवस्था है, स्वातन्त्र्य की भी और परतन्त्रता की भी। इसलिये मृत्यु के निमित्त अत्यन्त भयानक होने पर भी स्वयं इतनी भयानक नहीं होती। भयानकता मृत्यु के क्षण के इस पार है, उस पार नहीं। इसमें ईश्वर का न्याय तो है ही, दयालुता भी है। जैसे घोर सुषुप्ति में उस समय के लिये त्रिविध तापों से छूट जाता है इसी प्रकार मृत्यु में भी ऐसा होता है। वेद कहता है "**यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्यु:**"। अमृत और मृत्यु दोनों उसी की छाया हैं। उसी की अनुकम्पा है। इसलिये ईश्वर दयालु है।

एक प्रश्न का उत्तर और देना है। यदि हमारे कर्मों का ही फल ईश्वर देता है तो उसने दया ही क्या की? यद्यपि हम इसका दार्शनिक पक्ष दिखा चुके हैं। फिर भी लौकिक दृष्टि से इस पर मोटी रीति से विचार करते हैं।

कल्पना कीजिये कि आपके गाँव में एक हलवाई रहता है जो ३रु. सेर मिठाई बेचता है। किसी को उधार नहीं देता। दाम कसकर लेता है। क्या आप उसके कृतज्ञ होंगे और उसकी दयालुता की अनुभूति आपको होगी? कदापि नहीं। उसने आपके साथ क्या सलूक किया? वह कसकर दाम लेता है तब मिठाई देता है। कल्पना कीजिये कि वह दुकान लगाना बन्द कर दे या अन्यतर चला जाय तो क्या ३रु. ले जाकर आप एक सेर मिठाई क्रय कर सकेंगे? नहीं। यदि दूसरे स्थान से मंगावें तो चार या पाँच रुपये सेर पड़ेगी और तत्-क्षण न मिल सकेगी। उस समय आपको ज्ञात होगा कि हलवाई के होने से आपको नित्य १रु. या २रू. सेर का लाभ होता था। उसकी इच्छा दया करने की न भी रही हो, परन्तु परिस्थिति आपके साथ दया करती थी।

एक और दृष्टान्त लीजिये। किसी विश्वविद्यालय में परीक्षार्थी को उतने ही अङ्क मिलते हैं जितनी उसकी योग्यता उत्तर-पत्रों से सिद्ध होती है। विश्वविद्यालय आपके साथ

कोई दया नहीं करता, आप ऐसा ही सोचते हैं और ऐसा ही कहते हैं, परन्तु यह वास्तविक स्थिति नहीं है। जिन देशों या प्रान्तों में उच्च विश्वविद्यालय नहीं हैं, वहाँ के विद्यार्थी इसी योग्यता की उचित माप के लिये बहुत-सा धन व्यय करके दूर देशों को जाते हैं। उस समय ज्ञात होता है कि न्यायपूर्वक परीक्षा लेना भी दया है। यदि विश्वविद्यालय न हों तो परिश्रम की जाँच कौन करे और उसको प्रमाणित करके उपाधियाँ कौन दे?

इन दो दृष्टान्तों से ज्ञात हो जाता है कि परिश्रम के फल की प्राप्ति के लिये साधन उत्पन्न करना भी दया है। क्योंकि आपके परिश्रमरूपी यज्ञ को सफल करने के लिये यह साधन उपकारक है। यज्ञ के ग्रन्थों में इस प्रकार के यज्ञ के अङ्गों को उपकारक कहा है। उपकारक कौन है? जो कारक के कारकत्व में सहायक हो। (उप+कारक=उपकारक)। उपकारक के दो प्रकार बताये हैं, संनिपत्त्योपकारक और आरादुपकारक। संनिपत्त्योपकारक वो साधन हैं जो निकटवर्ती हैं और हम जल्दी से पता लगा लेते हैं। जैसे किसी ने हमको खाना खिला दिया। भोजन से जो तृप्ति हुई उसमें भोजन का दान संनिपत्त्योपकारक है, परन्तु यदि किसी ने रोटी के बजाय एक खेत दे दिया जिसको जोतने-बोने से महीनों पीछे रोटी के दर्शन होंगे तो यह खेत का दान आरादुपकारक है। जो वस्तुयें तत्काल सहायता करती हैं उनका अनुभव तो बच्चा भी कर लेता है, परन्तु जो बहुत दूर से उपकार करती हैं उनको समझने के लिए बुद्धि लगानी पड़ती है। तात्पर्य यह है कि हमारे परिश्रम के लिये क्षेत्र उपस्थित करना और परिश्रम का फल देना भी तो दया है। यह दया प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष है और केवल विचार करने से ही ज्ञात हो सकती है। आप अपने सोने को तुलवाने के लिये सुनार या सर्राफ़ के पास जाते हैं। वह आपके सोने को बढ़ा नहीं देता। परन्तु तुलवाकर ही आप उसके कृतज्ञ होते हैं। परीक्षक का परीक्षा लेना भी दया है। और यदि इस परीक्षा को वह बिना स्वार्थ या पक्षपात के करे तो वह न्यायरूपी दया या दयारूपी न्याय होगा। लोग कहते हैं कि हमारे ही कर्मों का तोलकर फल दिया तो ईश्वर की दया क्या हुई? वह नहीं समझते कि यदि वह ऐसी सृष्टि न बनाता जिसमें आप को कर्म करने का क्षेत्र मिल सके तो आप कर्म ही कैसे करते। और यदि उनका फल न देता तो कर्म स्वयं फल कैसे दे सकते? जिन्होंने यूनिवर्सिटियाँ खोलीं या परीक्षापटल बनाये, उन्होंने हमारे ऊपर दया की। परन्तु यह दया आरादुपकारक है। मोटी नहीं, बारीक है। स्थूल नहीं, सूक्ष्म है। प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष है। **'परोक्षप्रिया हि देवाः।'** देव लोग परोक्ष से परोक्ष, दूर से दूर अति दूर और अति गुप्त चीजों को भी देखकर उनका पता लगा लेते हैं। प्रत्यक्ष-प्रिया तो गधे भी होते हैं।

अब एक बात रह गई। कर्म फल कैसे देते हैं, जो कर्म हम करते हैं वह तो तभी नष्ट हो जाता है। फल न तो उसी काल में मिलता है न उसी देश में। यह देशान्तर और कालान्तर में जो फल मिलता है उसका कर्म के साथ कैसे सम्बन्ध जोड़ा जाय? कुछ दार्शनिकों ने एक अदृष्ट की कल्पना की है। वह अदृष्ट क्या है? यदि यही जान सकते तो उसे अदृष्ट क्यों कहते? वह अदृष्ट भी है और अज्ञात भी, कुछ विद्वानों ने उसको केवल 'ईश्वर की व्यवस्था' कहा है। है तो व्यवस्था अवश्य, परन्तु वह मनुष्य के अल्पज्ञान से बाहर की चीज है। लौकिक शासन में भी इसके उदाहरण मिलते हैं, एक आदमी मनुष्य-हत्या करता और छिप जाता है। हत्या हुई उत्तरप्रदेश के एक गाँव में आज, और पकड़ा गया मद्रास के किसी नगर में चार वर्ष पीछे। यह देशान्तर और कालान्तर का दण्ड अपराध से कैसे सम्बन्धित हुआ और किसने किया। आप यही उत्तर देंगे कि राजकीय व्यवस्था थी, यह व्यवस्था कैसे काम करती रही। यह साधारण जनता के लिये तो अदृष्ट ही था, परन्तु शासकों के लिये समस्त सूत्रमाला दृष्ट रही होगी। यदि इसी दृष्टान्त को दूर तक फैलाया जाय, आज के जीव के किये कर्म युगान्तर या लोकान्तर में कैसे फलीभूत होते हैं, यह एक अदृष्ट बात है। प्रत्यक्ष से परे है, परन्तु अनुमान से परे नहीं, ईश्वर की व्यवस्था उसी प्रकार लोकान्तरों और युगान्तरों तक जा सकती है जैसे एक बड़े शासक की व्यवस्था उसके शासन क्षेत्र में काम करती है। जितना बड़ा शासन क्षेत्र होगा वहीं तक व्यवस्था काम करेगी। अतः जिन लोगों की समझ में नहीं आता कि इस जन्म में किये कर्म जन्मान्तर में कैसे फलित होते हैं, वे इतना विचार करना नहीं चाहते। क्या कारण है कि ऑक्सीजन और हायड्रोजन के परमाणुओं का जो अनुपात प्रयाग में गंगाजल बनाता है, वही अनुपात अमेरिका के मिसिसिपी नदी में भी काम करता है। दो जलराशियाँ इतनी

दूर हैं। उनमें कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं, परन्तु एक अदृष्ट नियम सूत्र है, जो दोनों दूरस्थ घटनाओं में घटित होता है। इसको आप ईश्वर की व्यवस्था कहें या कुदरत का कानून कहें, हैं यह दोनों अदृष्ट और अदृष्ट रूप से ही काम करते हैं। बीज के धर्मों का फल में कैसे अतिदेश होता है और किस परिमाण में, और उन धर्मों में अवान्तर क्रियाओं द्वारा कितना परिवर्तन होता है, यह है एक जटिल समस्या, परन्तु कोई व्यवस्थापक है अवश्य, जिसकी अदृष्ट व्यवस्था कर्म और फल में सम्बन्ध करती है और उस फल को भोगने वाला वही है जिसको कर्तृत्व प्राप्त है। जिस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ का फल यजमान को ही मिलता है, क्योंकि यज्ञ किया ही उसके हित के लिये जाता है चाहे ऋत्विज कोई हो, द्रव्य कुछ भी हो और देवता कोई भी हो। इसी प्रकार–

कर्म प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस करे सो तस फल चाखा।।

यह विश्व की दयालुता है कि कर्म को प्रधान करके हमको उसका फल चखाया। यदि यह नियम न होता तो जगत् की क्या गति होती, वह कैसी अन्धेर नगरी होती, इसकी कल्पना करने से भी हृदय काँप जाता है। व्यवस्थापक की व्यवस्था और उसका बिना लेशमात्र स्वार्थ के संचालन, यह दयालु प्रभु के लिये ही संभव है। अत:–

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

गुरुकुलों को छात्रवृत्ति

स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती (अधिष्ठाता गुरुकुल गदपुरी, जिला पलवल, हरियाणा) ने अपने वैदिक प्रचार ट्रस्ट के द्वारा परोपकारिणी सभा में एक स्थिर निधि बनाई, जिसका उद्देश्य आर्य समाज की शैक्षणिक संस्थाओं (गुरुकुलों) को आर्थिक सहयोग प्रदान करना है। इस स्थिर निधि से प्राप्त ब्याज से परोपकारिणी सभा प्रतिवर्ष गुरुकुलों को छात्रवृत्ति प्रदान करती है। गत वर्ष कुल १,१२,००० रु. की छात्रवृत्ति दी गई, जिसका विवरण निम्न प्रकार है–

क्र. सं.	संस्था का नाम
1.	गुरुकुल गदपुरी जिला पलवल, हरियाणा
2.	आर्ष कन्या गुरुकुल ट्रस्ट हसनपुर, पलवल, हरियाणा
3.	गुरुकुल महाविद्यालय पूठ, बहादुरगढ़, हापुड़ (उ.प्र.)
4.	आर्ष गुरुकुल दाधिया जिला अलवर, राज.
5.	श्री सर्वदानंद संस्कृत महाविद्यालय, साधु आश्रम, अलीगढ़
6.	टंकारा ट्रस्ट ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि, गुजरात
7.	गुरुकुल भादस मेवात जिला मेवात, हरियाणा
8.	आर्ष कन्या गुरुकुल, शिवगंज
9.	गार्गी कन्या गुरुकुल, चाँमड़, पोस्ट धैंया, अलीगढ़, उ.प्र. 202124
10.	परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर, राज.

विद्या की वृद्धि हेतु दिये इस सराहनीय सहयोग के लिये परोपकारिणी सभा स्वामी विद्यानन्द जी का धन्यवाद करती है।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित ऋषि मेले में आप सभी आमन्त्रित हैं।

१६, १७, १८ नवम्बर २०१८, **सम्पर्क**– ०१४५–२४६०१६४

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

डॉ. सुभाष वेदालङ्कार

परोपकारी के अगस्त प्रथम २०१८ अंक में पृष्ठ २ पर डॉ. सुभाष वेदालङ्कार का चित्र छपा है। उन पर परिचयात्मक लेख हमें तब प्राप्त न हुआ था, इसलिये ना दे सके। यह लेख उन्हीं का संक्षिप्त जीवन-परिचय है। -सम्पादक

शताधिक पुस्तकों के लेखक, वेद एवं संस्कृत-साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, कवि, गायक, पं. रामनाथ वेदालङ्कार के शिष्य, राजस्थान विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी के यशस्वी स्नातक, संस्कृत भाषा एवं महर्षि दयानन्द को सर्वात्मना समर्पित डॉ. सुभाष वेदालङ्कार दिनांक ६ जुलाई २०१८ रात्रि १०.३० बजे अपने पार्थिव शरीर को त्याग कर अन्तहीन यात्रा हेतु प्रयाण कर गए।

आपने १५ वर्ष राजस्थान में सर्वकार द्वारा संचालित महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य किया एवं १७ वर्ष राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर में अध्यापन किया। पढ़ाते हुए आपने पुस्तक को कभी हाथ में लेकर नहीं पढ़ाया। सदा रुचिकर प्रकार और छात्रों के मनोविज्ञान को समझते हुए अध्यापन कार्य किया। आपने पूर्ण ईमानदारी से शिक्षा के कर्तव्यों का निर्वहन किया। कभी किसी जाति अथवा धर्म के आधार पर किसी छात्र व छात्रा से भेदभाव या पक्षपात नहीं किया।

आपने अपने शिष्यों के साथ पुत्रवत् स्नेह किया और इसके परिणाम स्वरूप पुत्रों के ही समान आपके अनेक शिष्यों ने उच्च पदों को अलंकृत किया। आपके स्नेह के भाजन शिष्यों में अग्रगण्य श्री प्रियव्रत पंड्या एवं श्री हेमिन्द्र पाटीदार थे जो R.A.S. के रूप में चयनित होकर उच्चतम पदों से सेवा निवृत्त हुए।

डॉ. सुभाष वेदालङ्कार ने लगभग ६५ संस्कृत की मौलिक पुस्तकों प्रणयन किया और ४५ रचनाओं का संपादन किया। आपकी प्रमुख गद्य रचनाओं में- भारतीय संस्कृतिः, महाराणा प्रताप चरितम्, कुरल चित्रणं, संस्कृत-निबन्ध-पारिजात इत्यादि हैं।

पद्य कृतियों में अमृत लहरी, ईश काव्यम्, ईश स्तोत्रम्, धूमगिरि शतकम्, संस्कृतेनार्जनम् और विश्वविद्यालय गौरवम् इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त आपने अनेक गीत लिखे जो पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए। संस्कृत गीत शतकम्, संस्कृत, ईश्वर भक्ति, देश भक्ति गीतम्, संस्कृत गीतांजलिः, संस्कृत हिंदी बाल गीतम्, संस्कृत शिशु गीतम् इत्यादि प्रमुख गीत पुस्तकें हैं।

१९८४ में जब आप अलवर के सरकारी कॉलेज में कार्यरत थे, आपने अपने अधिकारियों से निवेदन किया कि आपको जयपुर गवर्नमेंट कॉलेज में स्थानान्तरित किया जाए। कारण पूछने पर डॉ. सुभाष जी ने कहा कि मेरे पिता अस्वस्थ हैं। अधिकारियों ने मना कर दिया। आपने तुरन्त अपना त्याग-पत्र उन्हें सौंप दिया। अधिकारी हतप्रभ हो गए और विस्मय से पूछा की आप त्याग-पत्र देकर क्या करेंगे ? डॉ. सुभाष वेदालङ्कार ने कहा की इस समय मुझे पिता के स्वास्थ्य के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझ रहा और पिता की सेवा के साथ कुछ लिख लिया करूंगा; लिखना जानता हूँ। अधिकारी इतने प्रभावित हुए की उन्हें त्याग-पत्र वापिस लेने को कहा और शीघ्र जयपुर स्थानान्तरित करने का आश्वासन दिया।

आप विनम्रता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। कहीं भी-कभी भी कोई शंका होने पर किसी आयु में अथवा पद में छोटे व्यक्ति से कुछ पूछ लेने या सीख लेने में घबराते नहीं थे और तुरन्त बेझिझक सीख लिया करते थे। मिथ्या अभिमान आपमें लेश मात्र भी नहीं था।

आपने अनेक शिष्यों को अपने घर में रखा, उनके भोजन की व्यवस्था की, उन्हें पढ़ाया और सेवावृत्ति में जो कुछ सहयोग हो सकता था वो किया।

आपने स्वयं २०० से अधिक शोध लेख लिखे, अनेक शोध छात्रों का निर्देशन किया, अनेक शोध ग्रन्थों के परीक्षक रहे, अन्तिम समय में भी मृत्यु से लगभग १० दिन पूर्व आप जोधपुर विश्वविद्यालय में एक शोध छात्र का वायवा लेने गए हुए थे।

विभिन्न आर्यसमाजों में (जिनमें अमेरिका की आर्य समाजें भी शामिल हैं) आपके हज़ारों व्याख्यान ईश्वर भक्ति, त्रैतवाद, भारतीय शिक्षा पद्धति, आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, उपनिषदों एवं वेदों के विभिन्न मन्त्रों की

व्याख्याओं के रूप में हुए।

राजस्थान विश्वविद्यालय में आप वेद पढ़ाते रहे, जिस समय आप संस्कृत विभागाध्यक्ष बने तब वेदों का यथार्थ स्वरूप छात्रों के सम्मुख आये इस उद्देश्य से आपने 'सायण भाष्य भूमिका' के स्थान पर ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कराया।

आपने सैकड़ों की संख्या में संस्कृत सम्भाषण शिविर भारत वर्ष के विभिन्न नगरों के महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों एवं विद्यालयों में लगाए। अपने परिवार में पुत्रों, पुत्रवधुओं, पौत्रों, पौत्रियों को निरन्तर संस्कृत में पारस्परिक वार्ता हेतु प्रेरणा की, जिसके परिणाम स्वरूप परिवार में सभी संस्कृतभाषी हैं। उनकी विशेष इच्छा यहाँ रहती थी कि किस प्रकार से सरलतम ढंग से न्यूनतम समय में संस्कृत से अनभिज्ञ व्यक्ति संस्कृत को बोलना और समझना सीख जाए। वे अपने प्रयासों में सफल रहे और संस्कृत के सरल शिक्षण की अनेक पद्धतियाँ उन्होंने विकसित कीं।

आपके परिवार में आबालवृद्ध सभी वेदपाठी, ईश्वरभक्त, याज्ञिक, व्याख्यान देने में समर्थ, एवं सदाचार के मार्गानुगामी हैं। इसका श्रेय आपके द्वारा की गयी उत्तम परवरिश को जाता है।

आपके द्वारा लिखित पुस्तकों, लगाए गए संस्कृत शिविरों, ६ बहनों के बड़े परिवार के प्रति उत्तम प्रकार से निभाए गए दायित्वों, की गयी सुदीर्घ यात्राओं, शतशः छात्रों के शोध निर्देशन को देखकर यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि ये सब कार्य किसी एक व्यक्ति के द्वारा किये गए हैं। आपने निश्चय ही ''**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**'' इत्यादि वेद के आदेश का अक्षरशः पालन किया है।

आप न केवल गीतों के लेखक हैं अपितु सम्पूर्ण भारत में आपने स्वरचित गीतों का सुन्दर स्वर में गायन कर संस्कृत भाषा को लोक प्रसिद्ध करने में अपना योगदान दिया है।

ऐसे संस्कृत प्रेमी, उदार हृदय, सरलता एवं सादगी की प्रतिमूर्ति, कर्मठ, गुणग्राही, शास्त्रज्ञ, लेखक, कवि, समाज सेवक को शत शत नमन एवं वन्दन।

ऋषि मेला २०१८ हेतु स्टॉल आवंटन

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १६, १७, १८ नवम्बर शुक्र, शनि, रविवार २०१८ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्य जगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की स्टॉल लगती हैं। प्रति स्टॉल किराया १००० रु. निर्धारित है। जिसकी राशि पहले जमा होगी उसी क्रम से स्टॉल का आवंटन होगा। जिन महानुभावों को जितनी स्टॉल की आवश्यकता है, उसी अनुरूप राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा या नकद जमा करावें।

स्टॉल सुविधाः- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- **१.** स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक से स्टॉल संख्या, राशि की रसीद दिखाकर प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नवम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित किया जाएगा। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोटः**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्राय: वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलत: धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

कोरी कल्पना है- 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'

-रामनिवास 'गुणग्राहक'

मेरा बड़ा स्पष्ट मानना है कि जिस व्यक्ति वर्ग वा समाज की परमात्मा के बारे में अवधारणा जितनी स्पष्ट व सत्य पर आधारित होगी, उस व्यक्ति, वर्ग वा समाज के जीवन-सिद्धान्त उतने ही उत्कृष्ट वा कल्याणकारी होंगे। इसके विपरीत परमेश्वर सम्बन्धी मान्यताओं में जिसकी जितनी अस्पष्टता होगी, जितना अन्तर्विरोध होगा, जितनी तर्कशून्यता होगी उस व्यक्ति, वर्ग वा समाज के जीवन-सिद्धान्त और सदाचार सम्बन्धी मर्यादाएँ उतनी ही निकृष्ट व पतनशील होंगी। संसार के विविध सम्प्रदायों के ईश्वर सम्बन्धी विचारों व उनकी सम्पूर्ण जीवन-शैली का तुलनात्मक अध्ययन करके कोई भी विवेकशील पुरुष इसकी पुष्टि कर सकता है। महर्षि दयानन्द और उनके अनुयायी सब आर्यों का एक स्वर से यही मानना है कि भारत के पतन और विनाश का एक ही मुख्य कारण है और वह है- वेद-विद्या का लोप होना। महर्षि दयानन्द का सारा जीवन वेद-विद्या के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित था। वेद को परमपिता परमात्मा का ज्ञान घोषित व स्थापित करके ऋषिवर आर्यों के लिए वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना धर्म ही नहीं, परमधर्म बता गये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि सब आर्यों के ईश्वर-सम्बन्धी विचार वेद-आधारित हैं, सत्य-आधारित हैं, तर्कपूर्ण हैं, सब काल में सत्य सिद्ध किये जा सकने वाले हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र की व्याख्या में ऋषि दयानन्द बड़े ही अनूठे ढंग से ईश्वर-सम्बन्धी मान्यताओं के बारे में बड़ी युक्तिपूर्ण रीति से लिखते हैं- ''जिस ईश्वर ने प्रकाश किये हुए वेदों से जैसे अपने स्वभाव, गुण और कर्म प्रकट किये हैं, वैसे ही सब लोगों को जानने योग्य हैं, क्योंकि ईश्वर के सत्य स्वभाव के साथ अनन्त गुण और कर्म हैं। उनको हम अल्पज्ञ लोग अपने सामर्थ्य से जानने को समर्थ नहीं हो सकते तथा जैसे हम लोग अपने-अपने स्वभाव, गुण और कर्मों को जानते हैं, वैसे औरों को उनका जानना कठिन होता है। इसी प्रकार सब विद्वान् मनुष्यों को वेदवाणी के बिना ईश्वर आदि पदार्थों को यथावत् जानना कठिन है। इसलिए प्रयत्न से वेदों को जान के उनके द्वारा सब पदार्थों से उपकार लेना तथा उसी ईश्वर को अपना इष्टदेव और पालन करनेहारा मानना चाहिए।'' (ऋ. १.९.४.)

यहाँ ऋषिवर की अनुपम युक्ति इतनी अकाट्य व अनूठी है कि सामान्य व्यक्ति भी इसे बड़ी सहजता से समझ सकता है। सब यह जानते और मानते हैं कि हमारे अपने स्वभाव, गुण और कर्मों को जितने अच्छे प्रकार से हम स्वयं जानते हैं, उतने अच्छे प्रकार से हमारे परिवारीजन व मित्रगण भी नहीं जान सकते, ठीक इसी प्रकार से परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव को जितना परमात्मा जानता है, उतना कोई दूसरा नहीं जान सकता। ऐसी स्थिति में जब वेद के माध्यम से परमात्मा ने अपने गुण, कर्म और स्वभाव प्रकट कर दिये हैं तो वेद को छोड़कर परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव के सम्बन्ध में दूसरी मानवरचित पुस्तकों को मानना बुद्धिमानी की बात नहीं! इस सम्बन्ध में ऋषिवर चेतावनी भी देते हैं- 'ईश्वर के सत्य स्वभाव के साथ अनन्त गुण और कर्म हैं, उनको हम अल्पज्ञ लोग अपने सामर्थ्य से जानने को समर्थ नहीं हो सकते।'' इतना होने पर भी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के बारे में मानवीय मान्यताओं को ही महत्त्व देना दु:खद है, दुर्भाग्यपूर्ण है।

हम जिस मूल विषय पर विचार करने निकले हैं, वह भारतीय जनमानस को कई शताब्दियों से दिग्भ्रमित करता आ रहा है। उसका दुष्प्रभाव भारतीय जनमानस में इतनी गहराई तक जड़ें जमा चुका है कि उससे मुक्त होने में भी शताब्दियाँ लग जाएँगी। **'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'** के विचार ने भारत का बहुत बड़ा विनाश किया है। जिसके मन-मस्तिष्क में 'संसार स्वप्न के तुल्य है' का विचार घर कर गया हो, वह सांसारिक उपलब्धियों के प्रति उदासीन होकर पलायनवादी प्रवृत्ति का शिकार हो जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे यहाँ राजाओं के कोषों से कई गुना धन मन्दिरों के अन्दर छिपाकर रखा गया। जगत् को मिथ्या बताने वाले जगत् गुरुओं ने इस विचार को लूट और ठगी का हथियार बनाकर काम में लिया। **'जगत्**

मिथ्या' का विचार स्वयं इतना मिथ्या है कि इसके झण्डाबरदारों को स्वयं इस पर पूरा विश्वास नहीं है, अगर इन्हें पूरा विश्वास होता तो क्या ये स्वयं 'जगद्गुरु' बनकर गौरवान्वित होते? भला 'मिथ्या गुरु' होना लज्जा की बात है या गौरव की? अगर इन्हें जगत् के मिथ्या होने पर पक्का भरोसा होता तो इस पर उठाये गये बड़े-बड़े प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देने का सच्चे हृदय से प्रयास तो किया गया होता। ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या बताने वालों का मानना है कि ब्रह्म अर्थात् परमात्मा की सत्ता है, परमात्मा से इतर और कुछ भी है ही नहीं। सृष्टि-रचना से पूर्व एकमात्र ब्रह्म ही अकेला था। उसे अकेला रहना ठीक न लगा तो उसने सोचा '**एकोऽहं बहुस्याम**' अर्थात् मैं अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ । इसके बाद उस ब्रह्म ने अपने में से ही जीव और जगत् की रचना कर डाली। कितने आश्चर्य की बात है कि लगभग दो-ढाई हजार वर्षों से लगभग पूरा भारतीय जनमानस आँख बन्द करके यह मानता चला आ रहा है कि सत्य ब्रह्म ने अपने आप में से ही मिथ्या जगत् को बना दिया। कोई यह पूछने और बताने वाला नहीं था कि सर्वव्यापक, अखण्ड, एकरस, चेतन, आनन्दस्वरूप ब्रह्म में से मिथ्या कहलाने वाला, टुकड़ों में बँटा हुआ, चेतनाशून्य, आनन्दरहित जड़ जगत् बन कैसे गया? सत्य ब्रह्म से जगत् बन चुके ब्रह्म की अखण्डता, चेतन और आनन्द आदि गुण कहाँ और कैसे लुप्त हो गये?

अगर प्रश्न पूछने का क्रम प्रारम्भ कर दें तो उत्तर देना तो दूर की बात है, उत्तर देने वालों के लिए प्रश्न गिनना भी कठिन हो जाएगा। पहले तो कोई यह बताये कि अपने स्वयं के लिए किसी भी प्रकार की कामना, इच्छा व तृष्णा से सर्वथारहित, पूर्ण तृप्त परमात्मा को ऐसा करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी? यह सब उसने अपने स्वयं के लिये किया या किसी दूसरे के लिए? अरे! दूसरा तो कोई था ही नहीं, था की भी बात नहीं, उनकी मानें तो दूसरा तो कोई है ही नहीं। आहा! क्या विचित्र व विलक्षण गोरखधन्धा है? सत्यस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक और आनन्दस्वरूप ब्रह्म न जाने क्यों और कैसे इस पचड़े में पड़ गया कि उसका कुछ अंश तो चेतनाशून्य जड़ जगत् बन गया और कुछ अंश अविद्याग्रस्त होकर, जड़ जगत् के व्यामोह में पड़कर अपने ही अन्य अंशों के साथ अन्याय व अत्याचार करने लगा। उस अंश का नाम जीव पड़ गया, हमारे जगत् गुरु स्वयं को ऐसा ही ब्रह्म का अंश मानते हैं। ब्रह्म के अंश कहलाने वाले इन जगत् गुरुओं की स्थिति भी बड़ी विचित्र है। ये नितान्त चेतनाशून्य जड़ बन चुके जगत् रूप ब्रह्म के मायाजाल में फँसकर शुद्ध ब्रह्म को पाने या उसमें मिल जाने के सच्चे प्रयत्न करते हुए नहीं दिखते। इनकी अल्पज्ञता ब्रह्म की सर्वज्ञता से कहीं अधिक जगत् की जड़ता के प्रति अधिक लालायित दिखती है। उसी जड़ता का स्पष्ट और प्रबल प्रभाव इनकी बौद्धिक क्षमता पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में इनकी एक भी अवधारणा सत्य सिद्ध की जा सकने वाली नहीं है। दो-ढाई हजार वर्षों से चली आ रही 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' की मान्यता को मानने वाले, इस पर गहन चिन्तन-मन्थन करके यह निश्चित रूप से प्रकट वा प्रमाणित नहीं कर सके कि ब्रह्म का कितना अंश जीव बन गया और कितना अंश जड़ जगत्? इन दोनों के निकल जाने पर कितना अंश शुद्ध ब्रह्म रह गया? वैसे ऐसा प्रश्न करना हमें अच्छा नहीं लग रहा, क्योंकि हम भलीभाँति जानते हैं कि परमात्मा अखण्ड-एकरस है, सर्वव्यापक है, उसके अंश वा खण्ड नहीं हो सकते। इतना होने पर भी जो परमात्मा का अज्ञानता व स्वार्थवश जीव और जगत् के रूप में बँट-कट जाना मानते हैं, उनके निश्चयात्मक ज्ञान वा अज्ञान को सार्वजनिक करने के लिए उनसे यह तो पूछना पड़ेगा कि आपका माना हुआ शुद्ध ब्रह्म कितने अंश में जीव बन गया और कितने अंश में जड़ जगत्?

महर्षि दयानन्द की शैली रही है कि वे किसी बात पर विचार करके सत्य की स्थापना व असत्य का निषेध बड़े तर्कपूर्ण ढंग से, कई प्रकार की युक्ति-प्रत्युक्तियों सहित करते हैं। इतना होने पर भी सत्य की स्थापना के लिए वे कितनी उदारता से काम लेते हैं, प्रतिपक्षी को कितना खुला अवसर देते हैं इसके दर्शन **सत्यार्थ प्रकाश** के ग्यारहवें समुल्लास में होते हैं। नवीन वेदान्ती और सिद्धान्ती के वार्तालाप में ऋषि लिखते हैं- (**नवीन वेदान्ती**) ''क्या तुम वशिष्ठ, शंकराचार्य आदि और निश्चलदास

पर्यन्त जो तुमसे अधिक पण्डित हुए हैं, उन्होंने लिखा है उसका खण्डन करते हो? हमको तो वशिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक (विद्वान्) दीखते हैं। **सिद्धान्ती**- तुम विद्वान् हो वा अविद्वान्? **नवीन वेदान्ती**- हम भी कुछ विद्वान् हैं। **सिद्धान्ती**- अच्छा तो वशिष्ठ, शंकराचार्य और निश्चलदास के पक्ष का हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं। जिसका पक्ष सिद्ध हो वही बड़ा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती तो तुम उनकी युक्तियाँ लेकर हमारी बात का खण्डन क्यों न कर सकते? (अगर तुम ऐसा कर सकते) तब तुम्हारी और उनकी बात माननीय होवे।''

बड़ी सीधी सी बात है कि किसी बड़े व्यक्ति ने कोई बात कही है, इसलिए वह सत्य है ऐसा कोई नहीं कह सकता। देश का दुर्भाग्य यह रहा है कि कई स्वार्थी लोगों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए बड़े-बड़े ज्ञान-घोटाले किये हैं। महाभारत के विनाशकारी युद्ध के बाद हजारों वर्षों तक पोंगा पण्डितों ने अपने-अपने जालग्रन्थ बनाकर उन्हें ऋषि-महर्षियों के नाम से प्रकाशित कर दिया। धर्मभीरु भोली जनता को वेदादि धर्मग्रन्थ पढ़ने वा सुनने तक के लिए दण्डित किया जाने लगा। ऐसी स्थिति में ऋषि-महर्षियों के नाम से बनाये ग्रन्थों की बातें भी ऋषि-वचन के रूप में स्वीकार की जाने लगीं। उन्हीं ऋषियों का नाम लेकर वे प्रश्न करने वालों को डाँटते रहे। आज भी उस परम्परा के अधकचरे पण्डित शंकराचार्य, व्यास, वशिष्ठ का नाम लेकर अपने पाखण्ड को चला रहे हैं। पूरा पुराण साहित्य ऐसे ही स्वार्थी पण्डितों की देन है। कुछ पुराणप्रिय पुरुष इसे गलत बताकर सब पुराणों को महर्षि व्यास की रचना मानते हैं। उनकी सन्तुष्टि के लिए हम महर्षि दयानन्द के वचन प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे पुराणों की रचना करने वालों का सांकेतिक परिचय मिलता है। सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में ऋषि लिखते हैं कि महाराजा भोज के राज्य में किसी ने व्यास जी के नाम से 'मार्कण्डेय पुराण' और 'शिवपुराण' बनाया। चूँकि महाराजा भोज स्वयं संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् थे, उन्होंने 'योगदर्शन' के सूत्रों पर 'भोजवृत्ति' नामक भाष्य लिखा है। जब उन्हें इस ज्ञान-घोटाले का पता चला तो उन्होंने उन पण्डितों के हाथ कटवा दिये और घोषणा करा दी कि कोई भी कुछ लिखे तो वह अपने नाम से लिखे, न कि ऋषि-महर्षियों के नाम से। इस घटना की जानकारी महाराजा भोज के 'सञ्जीवनी' नामक इतिहास में मिलती है।

उसी ग्रन्थ में महाभारत के बारे में लिखा मिलता है कि महाभारत की रचना करते हुए महर्षि व्यास ने ४४०० श्लोक लिखे थे, उनके शिष्यों ने ५६०० श्लोक लिखकर सम्पूर्ण महाभारत को १०,००० श्लोकों में पूरा किया था। महाराजा विक्रमादित्य के समय महाभारत में २०,००० श्लोक और महाराजा भोज के पिता के समय २५००० श्लोक हो गये थे। महाराजा भोज लिखते हैं कि मेरी आधी आयु तक महाभारत ग्रन्थ ३०,००० श्लोकों का हो गया। यह ग्रन्थ ऐसे ही बढ़ता गया तो एक दिन यह एक ऊँट का बोझा हो जाएगा। ये तथ्य पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों की पवित्रता व प्रामाणिकता स्वार्थी पण्डितों ने प्रदूषित की है। 'भागवत पुराण' के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि यह पुराण 'गीत गोविन्द' के लेखक पण्डित जयदेव के भाई पण्डित बोपदेव का बनाया हुआ है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में इस आशय के बोपदेव लिखित श्लोक भी दिये हैं और लिखा है कि विस्तार से देखना हो तो बोपदेव के लिखे ग्रन्थ 'हिमाद्रि' में देखें।

ये उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं कि महाभारत के बाद के कालखण्ड में स्वार्थी पण्डितों ने हमारे प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में खुलकर मनमानी मिलावटें की हैं तथा ऋषि-महर्षियों के नाम से मनमाने ग्रन्थ तैयार किये हैं। रामायण व मनुस्मृति जैसे मूल्यवान ग्रन्थ भी पापी-पण्डितों के ज्ञान-घोटाले से बच नहीं सके हैं। हमारी धार्मिक और सामाजिक विचारधारा में अवतारवाद, कर्मफल-व्यवस्था, फलित ज्योतिष से लेकर वैदिक-वर्णव्यवस्था के स्थान पर जन्मना जातिवाद, ऊँच-नीच और छुआछूत का कलंक, सतीप्रथा, बालविवाह-बहुविवाह जैसे विनाशक रोग इन स्वार्थी पण्डितों द्वारा किये गये ज्ञान-घोटालों की ही देन हैं। यह सब इसलिए लिखना पड़ा, ताकि हमारे सुधी पाठक सरलता से इस निर्णय तक पहुँच सकें कि-'**ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या**' का प्रपञ्च भी ऐसे ही ज्ञान-घोटाले करने

वाले अधकचरे पण्डितों के द्वारा बनाया या बढ़ाया हो सकता है। शंकराचार्य के ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर इसके विरुद्ध वचन भी मिलते हैं, जो वैदिक त्रैतवाद के प्रबल पोषक हैं। ऐसे में सन्देह होता है कि यह- **'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'** की कल्पना शंकराचार्य के ग्रन्थों में सच में है भी या पीछे से किसी घोटालेबाज ने मिला दी है? कुछ भी हो, लेकिन सच यह है कि **'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'** कोई दार्शनिक या वैदिक सिद्धान्त न होकर कोरी कल्पना मात्र है। इसकी पुष्टि में जितनी भी युक्तियाँ या उदाहरण दिये जाते हैं, वे सब प्रश्नों के प्रहार से क्षत-विक्षत होकर दम तोड़ चुके हैं। रस्सी में सर्प की भ्रान्ति या दर्पण व जलकुण्डों में सूर्य का प्रतिबिम्ब व परछाई वाले दृष्टान्त तो निरे बाल-बुद्धि के निरर्थक प्रलाप हैं। भला शुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं कुछ था ही नहीं तो भ्रान्ति व परछाई की बात करना भी अपनी अज्ञानता का ढिंढोरा पीटने से बढ़कर कुछ भी नहीं। आइये, इनकी कुछ अन्य युक्तियों, दृष्टान्तों व कथनों की सच्चाई भी जानते हैं।

'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' कहने वालों का एक प्रसिद्ध वाक्य है- **'एकोऽहं बहु स्याम'**- अर्थात् मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ। इसके लिए ये मकड़ी से उत्पन्न जाले का दृष्टान्त देते हैं कि जैसे मकड़ी से जाला उत्पन्न हो जाता है, वैसे ही ब्रह्म से जगत् उत्पन्न हो जाता है। इनसे पूछा जाए कि क्या मकड़ी का शरीर और उसके आत्मा को आप अलग-अलग नहीं मानते? अगर मानते हो तो बताओ कि जाला मकड़ी के शरीर से निकलता है या उसके आत्मा से? आत्मा से जाला उत्पन्न होने की बात ये कभी स्वीकार न करेंगे, शरीर से निकलने की बात भी नहीं मानी जा सकती क्योंकि मकड़ी के मृत शरीर से जाला नहीं निकलता। यहाँ आकर इनका दृष्टान्त इनके लिए उल्टा पड़ जाता है। यहाँ विचारने वाली बात यह भी है कि इनका माना हुआ ब्रह्म अकेला रहना अच्छा नहीं मानता, बहुत होने की कामना करता है, लेकिन बहु रूप (जीव और जगत्) होकर वह **'अहं ब्रह्मास्मि'** की घोषणा करता हुआ भी दूसरे से भय मानता है। जब दो होना ही भय का कारण था तो बहुत होने की क्या आवश्यकता थी? क्या यह जानकर, इनके तथाकथित ब्रह्म के ज्ञान पर या इन्होंने ब्रह्म के सम्बन्ध में जैसी ऊटपटाँग कल्पना की है, यह सोचकर इनकी बुद्धि पर तरस नहीं आता कि इनका कल्पित ब्रह्म अकेला रह नहीं सकता, बहुत होना चाहता है तथा बहुत होकर भयभीत भी होता है। लगता है कि ये कभी शान्तचित्त होकर यह विचार ही नहीं करते कि हम जो कह रहे हैं उस सबका निचोड़ वा निष्कर्ष जब सामने आयेगा तो हमारे लिए कितना कड़वा होगा। कभी-कभी मुझे लगता है कि परम्परावादी अन्धभक्तों (आँख के अन्धे व गाँठ के पूरे) की विशाल भीड़ अपने पीछे खड़ी देखकर जगत् को मिथ्या बताने वाले ये धर्मध्वजी लोग सत्य की भी चिन्ता नहीं करते। उन्होंने अपने अन्धभक्तों में अपना ऐसा आभामण्डल बना रखा है कि आज भी उनसे सीधा प्रश्नोत्तर करने वालों को उनकी भक्तमण्डली नास्तिक व उपद्रवी बताकर दूर धकेल देती है। जब तक यह करोड़ों की भक्तमण्डली विद्या को गुरुओं का भी गुरु मानकर धर्मगुरुओं को प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आगे आने को प्रेरित नहीं करेगी, तब तक हमारे धर्माचार्य धर्म और ईश्वर की मनमानी व्याख्या करने से नहीं रुकेंगे। जैसे अभेद्य किले में लम्बे काल तक सुरक्षित रहने वाले वीर योद्धा भी कालान्तर में युद्धभूमि में पराक्रम दिखाने की कला भूल जाते हैं, ठीक उसी प्रकार से अन्धभक्तों की अभेद्य मण्डली में हजारों वर्षों से सुरक्षित रहने वाले हमारे धर्माचार्य सत्य-सन्धान के लिए निरन्तर चलने वाली सनातन शास्त्रार्थ पद्धति से मुँह चुराने में ही अपना बड़प्पन व कल्याण मान बैठे हैं। महाराजा जनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य-गार्गी के शास्त्रार्थों से लेकर स्वयं शंकराचार्य तक ने शास्त्रार्थ-समर में अपनी विद्वत्ता का डंका बजाया था, मगर आज के हमारे धर्माचार्य इससे बच निकलने की कला में ही कुशलता मान बैठे हैं। **शेष भाग अगले अंक में...**

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद–पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी–छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ अगस्त २०१८ तक)

१. डॉ. अचला आर्या, अजमेर २. श्री मुमुक्षु मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ३. श्री वृद्धिचन्द गुप्त, जयपुर ४. श्री रुद्र गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ ५. श्री अभिषेक गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ ६. श्री सुधीर गुप्ता एवं श्रीमती सीमा गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ ७. श्री विश्रुत गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ ८. श्रीमती अंजली कपूर, दिल्ली ९. श्रीमती सुशीला कसालिया, हिसार १०. श्रीमती मनोरमा साहु, इन्दौर ११. श्री सौमित्र गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ १२. श्रीमती निर्मला देवी गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ १३. श्रीमती सीमा गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ १४. श्रीमती प्रेमलता गुप्ता, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ १५. श्री कृष्ण कुमार जांगिड़, अलवर, राज. १६. श्री गणपतलाल तापड़िया, कोटा, राज. १७. श्रीमती शिवकान्ता तापड़िया, कोटा, राज. १८. श्री लक्ष्मण मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर १९. श्री गणेशदत्त गोयल, बुलन्दशहर, उ.प्र.। – **परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१ से १५ अगस्त २०१८ तक)

१. डॉ. अचला आर्या, अजमेर २. श्री मुमुक्षु मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ३. श्री वृद्धिचन्द गुप्त, जयपुर ४. श्रीमती संजना शर्मा, अजमेर ५. श्री संजीवसिंह कच्छावा, होशंगाबाद ६. श्री लक्ष्मण मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ७. श्री जय भगवान, अलवर, राज. ८. स्व. श्रीमती सुशीला देवी वर्मा, गुलाबपुरा, राज. ९. श्रीमती सावित्री देवी, अजमेर १०. श्रीमती सुशीला कसालिया, हिसार, हरियाणा। – **परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

वैदिक विद्वान् डॉ. रघुवीर वेदालंकार राष्ट्रपति पुरस्कार के लिये चयनित

आर्यजगत् के वरिष्ठ विद्वान्, लेखक और वक्ता डॉ. रघुवीर वेदालंकार का नाम वर्ष २०१८ के लिए देश के प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वानों के लिए घोषित राष्ट्रपति – पुरस्कार के लिए सम्मिलित किया गया है। डॉ. रघुवीर जी वर्षों से निरन्तर साहित्य – साधना में संलग्न हैं। वेद, व्याकरण, निरुक्त, दर्शन, उपनिषद और योग पर आपकी मूल्यवान् कृतियों ने विद्वज्जगत् में अपार यश कमाया है। वर्षों तक दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन करके सेवानिवृत्त हुए डॉ. वेदालंकार ने अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में मूल्यवान शोधपत्र पढ़े हैं। महर्षि दयानन्द पर आपने शोध संगोष्ठी का भी आयोजन किया है। महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सन्दर्भ में आपका लेखन बहुत मूल्यवान और बहुआयामी है। परोपकारी परिवार की ओर से इस गौरवपूर्ण उपलब्धि के लिए हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं।

आवश्यक सूचना

कुछ विरोधी और निजी कारणों से असंतुष्ट व्यक्ति अपने हितों के लिए ऋषि उद्यान, आर्ष गुरुकुल और परोपकारिणी सभा अजमेर के विषय में फेसबुक, यू-ट्यूब आदि संचार माध्यमों के द्वारा तरह-तरह की भ्रान्तियाँ तथा निंदा फैला रहे हैं, जैसे- गुरुकुल बंद किया जा रहा है, ऋषि उद्यान बंद हो रहा है आदि। आर्यजनों से निवेदन है कि वे इन अफवाहों पर विश्वास न करें। सभी व्यवस्थाएं एवं आर्ष पाठविधि भलीभांति जारी रहेंगी। परोपकारिणी सभा आर्य विद्वानों और निष्ठावान् आर्यों की सभा है।

प्रधान एवं मन्त्री, परोपकारिणी सभा

शङ्का समाधान - ३२

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- ''चतुर्वेद विषय सूची'' (वैदिक यन्त्रालय, अजमेर) में स्वामी जी ने **कुन्ताप सूक्त** को मिलावट माना है। स्वामी जी ने वेद को नित्य माना है, तो उसमें मिलावट कैसे सम्भव है? कृपया शङ्का का समाधान करें।

-आर्य मिलन, जयपुर (राज.)

समाधान- अथर्ववेद के बीसवें काण्ड में १४३ सूक्त हैं। **उनमें से सूक्त १२७-१३६ तक दस सूक्त कुन्ताप सूक्त के नाम से प्रसिद्ध हैं**। इन दस सूक्तों में १४७ मन्त्र हैं। इनमें भी एक सौ इक्कीस मन्त्र, छः द्विपदा तथा बीस मन्त्र सूत्रात्मक शैली (जैसे- क्वाहतं परास्यः -१२९.६, परि त्रयः -१२९.८, श्येनीपती सा- १२९.१९, शृङ्ग उत्पन्नः -१३०.१३, पाक बलिः -१३१.१२ आदि) में हैं।

वैदिक साहित्य में प्रत्येक संहिता से सम्बद्ध अनुक्रमणी-सर्वानुक्रमणी नामक ग्रन्थ हैं। इनमें मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द वर्णित हैं। 'अथर्ववेदीय बृहत्सर्वानुक्रमणी' में कुन्ताप सूक्तों के ऋषि, देवता, छन्द का उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

कुन्ताप सूक्तों पर आचार्य सायण का भाष्य नहीं है। मूल मन्त्र यथास्थान मुद्रित हैं। किसी भी मन्त्र पर ऋषि-देवता-छन्द भी निर्दिष्ट नहीं है।

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने मूल संहिताएं प्रकाशित की हैं। अथर्व संहिता का तृतीय संस्करण सन् १९५७ में प्रकाशित किया था। इस संस्करण में सूक्त **एक सौ सत्ताईस से पूर्व** ''।। **अथ कुन्तापसूक्तानि**।।'' **(खिलानि)'' मुद्रित है**। किसी भी मन्त्र अथवा सूक्त से पूर्व ऋषि-देवता-छन्द भी उल्लिखित नहीं हैं।

कुन्ताप सूक्तों के सन्दर्भ में एम. विण्टरनिट्ज का मत भी द्रष्टव्य है-

''...इसी प्रकार अध्याय बीस (विण्टरनिट्ज ने काण्ड के स्थान पर अध्याय शब्द का प्रयोग किया है।), **जो अथर्ववेद में बहुत पीछे से जोड़ा गया**, प्रायः सारा का सारा, ऋग्वेद के ही सोम-सत्र परक विभिन्न अंशों का उल्था एवं पुनः सम्पादन मात्र है। इस अध्याय के सूक्त १२७-१३६ की संगति क्या है? **स्वयं कुन्ताप का शब्दार्थ क्या है? यह कोई आज तक जान नहीं पाया**। इतना ही अनुमान होता है कि ये कुन्ताप भी मूलतः यज्ञपरक ही थे, क्योंकि अर्थ की दृष्टि से ये प्रायः ऋग्वेद की दान-स्तुतियां सी प्रतीत होती हैं।'' (द्रष्टव्य-प्राचीन भारतीय साहित्य, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ-१२१)

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी के विचार भी विण्टरनिट्ज के सदृश ही हैं। तद्यथा-''कुन्ताप सूक्त के आठ सूक्त (यद्यपि दस सूक्त कुन्ताप सूक्त कहलाते हैं। डॉ. द्विवेदी ने १२७-१२८ दो सूक्तों को कुन्ताप से बाहर किया है, इसके कारण का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है।) सर्वथा अस्पष्ट हैं। इनका क्या अभिप्राय है, यह अभी तक अज्ञात है। **इन आठ सूक्तों में अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनके अर्थ के विषय में कुछ भी कहना सम्भव नहीं है**।'' (द्रष्टव्य-अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन -पृष्ठ -२६)

गोपथ ब्राह्मण के षडह प्रसंग में कुन्ताप सूक्त विनियुक्त हैं। वहाँ इन्हें रैभी (१२७. १-४), पारिक्षितीः (१२७. ७-११) इन पारिक्षितीः मन्त्रों में अग्नि का वर्णन है। अग्नि ही परिक्षित् है-'**अथो खल्वाहुः, अग्निर्वै परिक्षित् अग्निहींदं सर्वं परिक्षियतीति**।' कारव्या (१२७. ११), दिशां क्लृप्ती (१२८. १-१६), उत्तरजनकल्प ऋचा (१२८. ६), इन्द्रगाथा (१२८. १२-१६) इन नामों से वर्गीकृत किया है। शेष प्रवल्हिका आदि आदि नाम बैतान श्रौत एवं गोपथ में समान हैं।

ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण अध्याय ३०, खण्ड ६-१० के अनुसार **कुन्ताप सूक्त में केवल तीस ऋचाएँ (सूक्त एक सौ सत्ताईस की चौदह तथा सूक्त एक सौ अट्ठाईस की सोलह)** हैं। ये नाराशंसी, रैभी, पारिक्षिती, कारव्य, दिशां क्लृप्ति, जनकल्प और इन्द्रगाथा हैं। इसके अनन्तर '**एता अश्वा आ प्लवन्ते**' आदि सत्तर पद हैं। इन्हें ऐतश प्रलाप कहा गया है। अथर्ववेदी इन्हें योगविभाग द्वारा छिहत्तर पद बनाकर पढ़ते हैं। अथर्व २०.१२९-१३२ में २०+२०+२०+१६=७६ ये छिहत्तर पद हैं। इसके अनन्तर

छः प्रवल्हिका (सूक्त १३३), छः आजिज्ञासेन्या (सूक्त १३४), तीन प्रतिराधा, एक अतिवाद, दो देवनीथ, तीन भूतेच्छद। इसके पश्चात् सोलह आहनस्या (सूक्त १३६) हैं। अथर्ववेदी इन सबको कुन्ताप सूक्तों के नाम से ही व्यवहृत करते हैं।

आचार्य सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण ३०.६ के प्रारम्भ में- **''...तत ऊर्ध्वं कुन्तापाख्यं सूक्तं खिले कुन्ताप नामके ग्रन्थे समाम्नातं त्रिंशदृचं वक्तव्यमिति तदितिहासमाह-** '' इन्हें ऋग्वेदीय खिल सूक्त कहा है।

अथर्ववेदीय वैतानश्रौतसूत्र कण्डिका ३२ (अ. ६, क. २, सूत्र १९-३१) में कुन्ताप सूक्तों का विनियोग गवाययन सूत्र में किया गया है। आश्वलायन श्रौतसूत्र में भी कुन्ताप सूक्तों का विनियोग उपलब्ध है।

वेद का अध्येता जानता है कि-**'खिल' एवं 'परिशिष्ट' दोनों पद समानार्थी हैं।** चतुर्वेद विषय-सूची में महर्षि ने **''परिशिष्टानि प्रक्षिप्तानि विज्ञेयम्''** वाक्य द्वारा **परिशिष्ट को प्रक्षिप्त पद द्वारा व्याख्यात किया है। यह पूर्व परम्परा का अनुसरण मात्र है।** साथ ही महर्षि ने-**''यद्वा** वाणीत्यादि (२०.१४२.४), ऋतस्येत्यादि (२०.१४३.३), मधुमानित्यादि (२०.१४३.८) पदार्थ विद्या'' कुन्ताप सूक्तों के पश्चवर्ती सूक्तों के प्रतीक रखकर इनमें पदार्थ विद्या का वर्णन स्वीकार किया है। महर्षि ने बीसवें काण्ड में पदार्थ विद्या का निर्देश किया है। **महर्षि द्वारा प्रयुक्त 'यद्वा' पद पक्षान्तर का ग्राहक मानने पर कुन्ताप सूक्त पदार्थ विद्या के प्रतिपादक हैं। परम्परा इन्हें परिशिष्ट/खिल ही मानती है।**

१ से १५ अगस्त २०१८

संस्था समाचार

स्वतन्त्रता दिवस कार्यक्रम- इस अवसर पर १५ एवं १६ अगस्त को सायंकाल यज्ञोपरान्त देशभक्ति गीत और व्याख्यान हुए। कार्यक्रम में ब्र. शिवनाथ, ब्र. ज्ञानप्रकाश, ब्र. चंदन, श्री मुमुक्षु मुनि, श्री सुरेन्द्र जी और डॉ. नन्दकिशोर काबरा जी ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

जन्मदिवस पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की भव्य यज्ञशाला में ९ अगस्त को श्री बाबूलाल चौहान के पौत्र-पौत्री, श्री पन्नालाल के पुत्र-पुत्री जुड़वाँ भाई-बहन पवन और प्रिया का जन्म दिन मनाया गया। परोपकारिणी सभा की ओर से यजमान परिवार को हार्दिक शुभकामनायें।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, वैदिक यन्त्रालय, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, अन्त्येष्टि स्थल-मलूसर, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, उपदेश ग्रहण करने, व्याकरण-दर्शन-वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए आर्यजन देश-विदेश से निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में उपलब्ध रहती है। पिछले १५ दिनों में लाडनू, जोधपुर, गंगापुरसिटी, बोधाना, जयपुर, कोटा, बीकानेर, पानीपत, रेवाड़ी, रोहतक, दिल्ली, उज्जैन, मेरठ, लखनऊ, डिमा, फतेहपुर शेखावटी आदि स्थानों से ४१ अतिथि ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन-प्रातः कालीन सत्संग में प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु, श्री कन्हैयालाल आर्य, आचार्य सोमदेव और आचार्य कर्मवीर के व्याख्यान हुए। सायंकाल सत्संग में आचार्य सत्येन्द्र आर्य ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का पाठ करवाया तथा व्याख्यान दिया। शनिवार सायंकालीन सत्संग में श्री रमेश मुनि एवं श्री मुमुक्षु मुनि ने व्याख्यान दिया। रविवार सायंकालीन प्रवचन में ब्र. ज्ञानप्रकाश ने व्याख्यान किया एवं अन्य ब्रह्मचारियों ने भजन सुनाया।

छात्रवृत्ति वितरण- सेठ शिवकुमार चौधरी, इन्दौर के सौजन्य से प्रतिवर्ष सभा कर्मचारियों के बच्चों को छात्रवृत्ति दी जाती है। वैदिक विद्वान् आचार्य विद्यादेव के करकमलों द्वारा सभा की ओर से छात्रवृत्ति के चैक दिये गये। जिन्हें इस माह में छात्रवृत्ति दी गई उनके नाम हैं- जतिन, अनीष, आजाद, रोहित, शिवम, अनिरुद्ध, विष्णु सिंह, कु. किरण, कु. सोनिया, कु. मोनिका, कु. ऋषिका, कु. यशस्वी, कु. तेजस्वी, कु. स्वीटी, कु. हिमांशा। छात्रवृत्ति हेतु आवेदन पत्रों को संकलित करने, सभा अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त करने और चेक वितरण करने की व्यवस्था श्री वासुदेव आर्य ने की।

१५ सितम्बर जिनकी पुण्यतिथि है...

काश! कोई उन्हें भी याद रखता
पं. नारायण प्रसाद 'बेताब'

प्रभाकर

कलम भारी होती है, बहुत भारी। इतनी भारी कि कुछ लिखने की सोचकर उठाओ तो हिम्मत नहीं पड़ती, और अगर जीवन भर की इकट्ठी की हुई ऊर्जा को खर्च करके उठा भी लो तो मजाल है जो दो अक्षर कागज़ पर उतार सकें। इस हालात का सही बयान तो वही कर सकता है जिसने जिन्दगी में पहली बार माइक पकड़ा हो। जी-तोड़ रट्टा लगाने के बाद माइक पर खड़े होते ही अद्वैतवाद नज़र आने लगता है। सब कुछ सफाचट्ट, निल बटे सन्नाटा, जैसे सब कुछ सपना हो। ऐसा ही कुछ अपना हाल है। शब्द बगावत पर उतर आये है। पर शब्दों को बगावत मेरी नालायकी से थी, मुझसे नहीं, इसीलिए 'बेताब' साहब का नाम सुनते ही बगावत छोड़ समर्पण कर दिया। आखिर कई सालों तक उन्हीं के इशारों पर थिरकते हुए साहित्य की महफ़िल को चार चाँद लगाए थे इन शब्दों ने। कागज़ पर बिखरी स्याही को साहित्य की संज्ञा देने के लिए '**बेताब**' नाम ही काफी था। मैं भी बेताब जी पर इसीलिए लिख रहा हूँ ताकि इस लेख को लेख समझा जाये और मुझे लेखक।

विधाता ने मनुष्य नाम के प्राणी को एक आजाद दिमाग दिया है, जिससे वह खुले तौर पर सोच सकता है। खाना, पीना, बोलना-सभी काम इसी दिमाग की देखरेख में चलते हैं। यही पुर्ज़ा तय करता है कि आज खाने में पेट की सुननी है या जीभ की? कपड़े पहनते वक्त शरीर की सहूलियत देखनी है या लोगों के ख्यालों की? फैसले में ज़रा सी चूक होते ही खामियाज़ा शरीर को भुगतना पड़ता है। अभी-अभी श्रीमान् जी का मन शान्त था, ठीक-ठाक सोच पा रहा था, पर जैसे ही भड़काऊ भाषण सुना, होश खो बैठे। उस वक्त भाषण करने वाले को छोड़कर सारी दुनिया राक्षस नगरी नज़र आने लगती है। मन में तोड़-फोड़ होने लगती है और कुछ देर बाद वह मन की तोड़फोड़ सड़कों पर दिखाई देने लगती है। आखिर ये हुआ कैसे?

हुआ यूँ कि हम सोचने समझने में स्वतन्त्र हैं- ये सच तो है, मगर ये तो अधूरी बात है, आधा सच है। अधिकतर मामलों में तो हम वही सोचते हैं, जो सोचने के लिए हमें प्रेरित किया जाता है। अब रोज़मर्रा के कामों को ही देख लें, घर से निकलते हैं एक कपड़ा खरीदने और जैसे ही भुगतान करने लगते हैं तो आपसे कहा जाता है कि अगर इतना सामान और खरीद लोगे तो छूट मिल जाएगी। यहाँ एक दिमाग पर दूसरा दिमाग असर दिखाने लगता है और हम वो खरीद लाते हैं जो एक बार कहीं रख देने पर केवल यदा-कदा सफाई के वक्त ही आँखों के सामने से गुज़रे। वशीकरण की इस तकनीक को समझदार लोगों ने नाम दिया है 'कला' और इसके मालिक को 'कलाकार'।

दुनिया की बाकी चीजों की तरह कलाकारी भी दो मुँही तलवार है, इससे सच और झूठ दोनों को काटा जा सकता है। ये इस पर तय करता है कि चलाने वाले की भावना कैसी है? कुछ लोगों को यह कला विरासत में मिलती है, कुछ को भगवान् की दया से और कुछ मुझ जैसे किस्मत के मारे दूसरों की नकल करके खुद को कलाकार बनाने, बताने की कोशिश करते हैं। 'बेताब' साहब को यह कला पुरखों से विरासत में मिली थी या रेडीमेड (ईश्वर प्रदत्त) थी यह तो नहीं पता, पर थी भरपूर। दयानन्द उनके मानसिक गुरु थे, इसलिये इस कला का सदुपयोग करने के सिवाय उनके पास कोई चारा नहीं था।

'**बेताब**'-पूरा नाम 'पण्डित नारायण प्रसाद बेताब'। नाम शायद सुना होगा! शायद नहीं भी सुना होगा!! इस लेख को अन्त तक पढ़ने में आर्यजनों की उत्सुकता निरन्तर बनी रहे, उसके लिए पहले ही बता देना उचित समझता हूँ की 'बेताब' जी दिमागी आर्यसमाजी थे।

बात उन दिनों की है जब 'फिल्म' व्यस्क नहीं हुई थी, क्योंकि से अभी तक तकनीक के टीके नहीं लग पाये थे। फिल्मों के छुटपन में उन्हें प्यार से 'नाटक' कहकर पुकारा जाता था। जब कोई नई फिल्म, माफ कीजिये, नया नाटक आता तो जितनी बार उसका शो होता, उतनी ही बार कलाकारों को अभिनय करना पड़ता था। साथ ही कहानी लेखक के पास उसमें सुधार करने का भरपूर अवसर होता था। जब 'नाटक' बड़ा होकर आज 'फिल्म' बन गया तो एक बार जो बन गया-सो बन गया। सुधारा बच्चों को जा सकता है, बड़ों को नहीं।

उन दिनों नाटकों की कहानियाँ मुस्लिम या ईसाई तौर-तरीकों से भरपूर होती थीं। कथानक प्रायः अश्लील और अमर्यादित होते थे। जिसका नतीजा ये होता कि घर-परिवार एक साथ नाटक देखने नहीं जा सकता था। बच्चे-बूढ़े सबको अपनी वासनाओं और कुसंस्कारों को उभारने के पूरे साधन मिल रहे थे। नाटकों और नाटक देखने वालों को लोग घृणा की दृष्टि से देखते। वहाँ जाना समझो पतित होना।

तभी नाटकों की दुनिया में 'बेताब' के कदम पड़ते हैं। बेताब गये तो दयानन्द वहाँ खुद-ब-खुद पहुँच गये। जहाँ दयानन्द पहुँचे, वहाँ समझो ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त ऋषि पहुंच गये। अब रंगशाला आश्रम बन गई, नाटक धर्म-

शास्त्र बन गये, कथानक ऋषियों के उपदेश की तरह लगने लगे और ऐसा लगता मानो जनता नाटक देखने नहीं, उपदेश सुनने जा रही है। भरोसा नहीं होता ना। तो खुद ही देख लीजिये। अपने नाटक 'पत्नी प्रताप' को शुरू करते हुए 'बेताब' जी ने 'नटी' और 'सूत्रधार' के दो किरदार बनाये। उनका संवाद सुनिये-

सूत्र.- हम अपनी भाषा में जिसे दृश्य काव्य या नाटक कहते हैं, ऋषियों की भाषा में चाक्षुष यज्ञ इसका नाम है और **यज्ञ करना स्त्री और पुरुष दोनों का काम है**, परन्तु शोक है कि इस यज्ञशाला या उपदेश भवन में हमारी माताएँ और बहिनें बहुत कम नज़र आती हैं।

नटी- इसका कारण यह है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा पढ़ी-लिखी कम होती हैं, इसलिये उनको नाटक समझना दुश्वार होता हैं।

सूत्र.- पुरुष भी तो सब लिखे पढ़े नहीं होते और नाटक के भाव समझ लेते हैं, क्योंकि इस चाक्षुष यज्ञ में तो विशेषकर मन के साथ आँखों का व्यवहार होता है।

नटी- तो यह पुरुषों का अत्याचार है कि आप तो नाटक देखते हैं और उनसे कह देते हैं कि नाटकशाला बहुत दूर है।

सूत्र.- नहीं, इसमें श्रीमान् गृहस्थों का कुसूर नहीं, हमारा ही कुसूर है।

नटी- हमारा ही कुसूर है? यह क्यों?

सूत्र.- यों कि हमारे नाटकों की कथा प्रायः अश्लील और रचना वीभत्स रस से भरपूर होती है।

जब चला श्रृंगार रस मार्याद सीमा तोड़कर।
आ गया वीभत्स में लज्जा की आँखें फोड़कर।।
पूछ बैठी भाई से कन्या तो भगिनी बाप से।
शर्म से दोनों के दोनों रह गये मुँह मोड़कर।।

नटी- परमात्मा का धन्यवाद है कि **हमारा आज का प्रयोग अक्सीर है या ख़ाक है, परन्तु ऐसे कलंकों से पाक़ है।**

इस संवाद में बड़ी कुशलता से एक सिद्धान्त भी डाल दिया गया है कि ''यज्ञ करने का अधिकार स्त्रियों का भी है और यज्ञ के साथ वेदमन्त्र पढ़ने का अधिकार तो स्वतः ही मिल गया।'' नारायण प्रसाद 'बेताब' ने मनोरंजन या धनोपार्जन मात्र के लिये कलम नहीं उठाई, उन्हें तो दयानन्द के उपदेश रंगमञ्च के आकर्षक कलेवर में लपेटकर देने थे। वो अपने रंगमञ्च को यज्ञशाला, उपदेश भवन और व्यास गद्दी नाम से पुकारते हैं-

भक्ति भजन भाजन है, श्रद्धा विश्वास स्थान,
माता के समान है जो भारत की बाला है।
दूध भी पिलाया हमें गोद भी खिलाया हमें,
ज्ञान भी दिलाया हमें यत्न कर पाला है।
उन ही व्यवहारों के उन ही उपकारों के,
अर्पण नारायण यह तेरी शब्दमाला है।
सूरत चाहे भद्दी है कीर्ति पहले रद्दी है,
अब तो व्यास गद्दी है नाम रंगशाला है।। (पत्नी प्रताप)

इसी नाटक के एक सीन में बाल विवाह पर क्या जोरदार व्यंग्य किया गया है।

सास अपनी बहु को लेकर जुगल ज्योतिषी के पास जाती है और कहती है-

सास- क्या बहु है बिचारी, विपदा की मारी, सवा ग्यारह बरस की होने को आई, अभी तक किसी बच्चे की माँ नहीं कहलाई।

जुगल- तो क्या सात बरस की लड़की के औलाद चाहती है। इसके विवाह को कितने दिन हुए?

सास- मुद्दत गुजर गई, सात बरस की का हुआ था।

जुगल- (मन ही मन) होना ही चाहिये इसी उम्र में। ताकि **कच्ची उम्र में कच्ची बुद्धि की औलाद निकलती रहे और हम जैसे मूर्खों की भी दाल गलती रहे**, शास्त्र में भी लिखा है-

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी,
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला।

इस सीन में बेताब जी ने फलित ज्योतिषियों की भी जमकर खबर ली है। सारा प्रकरण यहाँ देने से लेख-लेख ना रहकर किताब ही बन जायेगा। बस यूँ समझिये कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों में लिखी बातों (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास २) को ज्यों का त्यों अपने किरदारों से कहलवा दिया है। ये तो कुछ भी नहीं, बेताब जी ने ठान ली कि केवल व्यावहारिक समस्याओं के समाधान ही नहीं बल्कि दार्शनिक रहस्यों की घुट्टी भी पिलाकर ही मानंगे। बातें ऋषियों की, पर अंदाज अपना। आखिरकार 'बेताब' साहब इस वक्त व्यास गद्दी पर हैं और रंगमञ्च उनका उपदेश भवन है, तो फिर दार्शनिक तत्त्वों को ही क्यों छोड़ा जाये। सत्संग में तो सारा ज्ञान उड़ेल दिया जाता है, पिपासु की प्यास अधूरी नहीं छोड़ी जाती।

इसी नाटक में एक सीन दिया गया, जिसमें 'यम' महाशय लोगों के तानों से परेशान होकर कहते हैं कि मैं अपनी मर्जी से किसी प्राणी को नहीं मारता, उनके कर्म ही इसके लिये जिम्मेदार हैं-

करते हैं यमराज को बदनाम जो मतहीन हैं।
जिन्दगी और मौत ये दोनों ही कर्माधीन हैं।।

बस फिर क्या था, सत्यार्थप्रकाश का नौवाँ समुल्लास और बन्ध-मोक्ष की व्याख्या का उपदेश चल पड़ता है। नजारा तो देखिये-

मुक्ति- बन्धो बन्ध! तुम बुरा ना मानना, जीव के लिये दो ही ठिकाने हैं, तुम्हारे पास रहेगा या मेरे पास। परन्तु क्षमा करना, तुम्हारे पास वास्तविक सुख का कोई सामान नहीं है।

बन्ध- और तुम्हारे पास?

मुक्ति- आनन्द ही आनन्द है, दुःख का निशान नहीं है।

बन्ध- देवी! क्षमा करना। तुम्हें पाकर भी कोई क्या निरन्तर तुमको पाता है? तुम्हारे पास रहकर भी तो मेरे पास आता है।

मुक्ति- आना ही चाहिये क्योंकि **ईश्वर न्यायकारी है**।

जिसका मुक्ति नाम है, उजरत है वह आमाल की,
माल की मिकदार पर कीमत मिलेगी माल की।
कर्म की सीमा है तो मुक्ति की सीमा क्यों न हो,
काम करके एक दिन तनख्वाह ले लो साल की।।

गज़ब किया है इस छन्द में। इतनी बड़ी बात चुटकी में गले उतार दी कि मुक्ति की भी समय सीमा होती है। लगता है जैसे कृष्ण ने ऊँगली पर गोवर्धन उठा लिया हो। पर वो यहाँ पर ही नहीं रुके। 'मुक्ति' देवी से फिर कहलवाते हैं-

मुक्ति- भ्राता बन्ध! जो इस बात का ताना देते हैं कि **मुक्ति अनित्य है नित्य नहीं, मैं भी कहती हूँ कि मैं अनित्य हूँ। जो वस्तु किसी निमित्त से प्राप्त होती है, वह आरम्भ होती है, इसलिये समाप्त भी होती है। इसमें दोष क्या है।**

तभी 'विष्णु' महोदय आते हैं-

विष्णु- ठीक है ''ते ब्रह्मलोकेषु परान्त काले...'' इत्यादि वचन इसमें प्रमाण हैं।

रही सही कसर 'इन्द्र' देवता ने आकर पूरी कर दी।

इन्द्र- यदि परान्तकाल तक भी मुक्ति का आनन्द भोगकर जीव फिर कर्म क्षेत्र में आता है तो यह मुद्दत क्या कम है। इस पर भी तो बन्ध के राज्य में बसने वाले हजार हैं, तो इस तुच्छ राज्य पर हँसने वाले दो ही चार हैं।

क्या शास्त्रों की बातों पर शक है, क्या दयानन्द की बात गले नहीं उतरती, क्या ऋषियों की बातें मिलावटी लगती हैं तो कोई बात नहीं। आइये बेताब की रंगशाला में, यहाँ पर ना कपिल है ना कणाद, ना ब्रह्मा है ना जैमिनी, ना मनु है ना याज्ञवल्क्य, और तो और दयानन्द भी नहीं है, यहाँ तो 'मुक्ति' खुद ही कह रही है कि मैं एक बार मिलने पर हमेशा नहीं रहती। अब तो मानना ही पड़ेगा। यहाँ 'विष्णु' स्वयं वेद मन्त्र का हवाला दे रहे हैं- तब मानोगे क्यों नहीं? मानना ही पड़ेगा, क्योंकि आज खुद ब्रह्मा, विष्णु और मुक्ति उतर आये हैं अपनी हकीकत बयान करने के लिये।

दयानन्द के विचारों का प्रचार करने की इस अनूठी शैली का बेताब साहब ने भरपूर उपयोग किया। मनोरंजन मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक है, पर मनोरंजन मात्र मनोरंजन तक ही सीमित नहीं होता, हमारी जीवनशैली का ढाँचा बदलने की, हमारी सोच बदलने की ताकत उसमें होती है।

जिन दिनों बेताब जी ने रंगमंच की दुनिया में कदम रखा, उस समय पारसी रंगमंच की पूरे भारत में धूम मची हुई थी। पारसी रंगमंच जिस भी शहर में जाता, लोगों को लगता कि जैसे कि अवतार ने इस शहर में जन्म लिया हो। नाटक देखने वालों की भीड़ टूट पड़ती। एक नाटक कई दिनों तक चलता था। पारसी रंगमंच के लेखकों में तीन धुरन्धर लेखक थे- १. नारायण प्रसाद बेताब २. आगा हश्र साहब और ३. राधेश्याम कथावाचक

राधेश्याम कथावाचक पौराणिक विचारधारा रखते थे। आगा हश्र अपनी ही तरह के मुसलमानी सभ्यता के पुट में रंगे हुए नाटक लिखते थे। उनके किरदार भी, यहूदी की लड़की, रुस्तम, सोहराब बगैरह ही थे। एक बार आगा हश्र साहब ने ''**इन्दर सभा**'' नाम से नाटक लिखा। नाम के मुताबिक हिन्दू कथाओं का तड़का तो था, पर नाटक का मुख्य नायक था 'गुलफाम'। इन्द्र की सभा में भी अप्सरायें नहीं, बहिश्त की हूरें नचा दीं-

''आती नये अन्दाज से अब सब्ज़ परी है।
लब सुर्ख है, पर सब्ज़ हैं, पोशाक हरी है।।''

इसका नाम 'इन्दर सभा' पता नहीं क्या सोचकर रखा गया था। 'तालिब' साहब का अपने नाटक 'रामायण' में देवी सीता के श्रीमुख से कहलवा गया वाक्य भी बड़ा मजेदार है। वह राम से कहती है- ''**तुम मुझको क्या मिले हो कि मेरा खुदा मिला।**'' यहाँ **सीता** और **खुदा** दूध दही का सा मेल लगता है। यही नाटक थे और यही तरीके थे पारसी रंगमंच के, 'बेताब' के आने से पहले। फिर 'बेताब' ने कलम थामी और नाटक लिखा- ''महाभारत'' जो पहली बार १९१३ को दिल्ली में पारसी रंगमंच पर आया। आया क्या, छा गया। इस नाटक को अभूतपूर्व सफलता मिली। इस सफलता को पं. नारायण प्रसाद 'बेताब' अपने शब्दों में कुछ इस तरह बयान करते हैं-

१. इसके प्रकाश से सब्जपरी तो अन्धकार की तरह उड़ गई।

२. गुल्फाम, चोर की तरह किसी अन्धे कुएँ में जा छुपे।

३. बकावली की बिल्ली का सर चिरागहाँ (फ़तीलसोज़, दीवट) न रहा।

४. उर्दू के अच्छे-अच्छे खेलों ने भी अपने बिस्तरे बाँधने शुरु कर दिये।

५. गानों के ''सरवर-बरतर-अख़तर-अनवर और घड़ी-घड़ी, पल छिन'' को देश निकाला दिया गया।

आर्यसमाज के सत्संगों एवं पौराणिक कीर्तिनों में भी झूमकर गाया जाने वाला प्रसिद्ध गीत-

अजब हैरान हूँ भगवन्, तुम्हें क्योंकर रिझाऊँ मैं।

यह भी इसी 'महाभारत' नाटक का ही है। इस नाटक से जुड़े कई किस्से बड़े रोचक और प्रेरणादायी हैं, जिन्हें बेताब साहब के जीवन की कुछ और घटनाओं के साथ पाठक अगले अंक में पढ़ सकेंगे। फिलहाल इतना ही।

शेष भाग अगले अंक में....